Chap-3

तृतीय अध्याय

नवगीत की पहचान

आरम्भ :

हिन्दी साहित्य के काव्याकाश में 'नवगीत' का विकास अपनी परम्पराओं एवम् परिवेशगत चुनौतियों के आधार पर सहज स्वाभाविक रूप में हुआ; उसका आरोपण पाश्चात्य काव्य की प्रवृत्तियों के तर्ज पर कृत्रिम रूप में नहीं हुआ । यही कारण है कि 'नवगीत' की स्थापना किसी विशेष नेता द्वारा किसी निश्चित तिथि से विधिवत् घोषणा पूर्वक नहीं हुई । यह बात और है कि इसके स्वतंत्र अस्तित्व का अनुभव करते हुए इसके विभिन्न प्रचलित नामों में से किसी एक को चुनकर उसका नामकरण-संस्कार अवश्य हुआ । जैसा कि यह लगभग सर्वमान्य हो चुका है कि 'नवगीत' की आधार भूमि छायावादी काव्य है और इस 'नवीन चेतना युक्त गीत' की अभिव्यक्ति सर्वप्रथम महाप्राण निराला के गीतों से हुई थी, जिसे परवर्ती युग में 'बच्चन' एवं भगवती चरण वर्मा जैसे व्यक्तिवादी कवियों ने विकसित करके नयी दिशा प्रदान की, किन्तु बौद्धिक दुरूहता के धुन्ध में यह चेतना सही राह न पा सकी । सन् १९५० ई. के आस-पास इसका मार्ग पुनः प्रशस्त हुआ । यह नवीन गीतात्मक चेतना अपने 'वस्तु', 'शिल्प' और 'दर्शन' की दृष्टि से अपनी परम्परा से पर्याप्त भिन्न थी । यह सच है कि उपर्युक्त कवियों के द्वारा छायावादी काव्य का व्यक्तिवाद और संघन हो गया किन्तु साथ ही वह सूक्ष्मता से स्थूलता की ओर, कल्पना से वास्तविकता की ओर तथा आध्यात्मिकता से भौतिकता की ओर अग्रसर हुआ। निश्चयी इससे छायावाद का उदात्त 'सौन्दर्य-स्वप्न' एवं 'भव्य प्रणय का स्वरूप' भंग हो गया, किन्तु वह गगन की असीम उच्चता से अवतरित होकर यथार्थ की लौकिक भूमि पर आ गया । इन कवियों द्वारा गीत की शैली में भी विकास हुआ । जहाँ पूर्ववर्ती छायावादी कवियों की शैली संस्कृत गर्भित अधिक थी, वहाँ अब वह लोक प्रचलित शब्दावली के निकट आ गई । नवगीत ने इस व्यक्तिवादी

काव्य की यथार्थवादी दृष्टि, लौकिक भावभूमि एवं सरल शैली का समन्वय अपने काव्य में एक सीमा तक किया जिससे वह छायावादी कल्पना एवं अयथार्थता के आक्षेप से मुक्त रहा । आगे चलकर प्रगतिवाद के प्रभाव से नवगीत में वैयक्तिकता के स्थान पर सामाजिकता, कल्पना के स्थान पर यथार्थ एवं पलायन के स्थान पर संघर्ष का प्रादुर्भाव हुआ । सामाजिक जीवन की विसंगतियों, आर्थिक विषमताओं, एवं साम्राज्यवादियों के शोषण आदि का चित्रण नवगीतकारों ने भी पूरी शक्ति से किया, किन्तु उन्होंने साम्यवादी विचारधारा की प्रतिबद्धता एवं प्रगतिवाद की प्रचारात्मकता को स्वीकार नहीं किया ।

प्रयोगवादियों ने प्रारम्भ में 'नवगीत' को 'नयी कविता' का ही अंग माना किन्तु जब इन्होंने देखा कि 'नवगीत' लोकप्रियता में नयी कविता से भी आगे बढ़ा जा रहा है तो उन्होंने इस आधार पर कि, इसमें बौद्धिकता, आधुनिकता और यथार्थवादिता का अभाव है, इसे अकाव्य घोषित कर दिया। परिणामतः नवगीत के अस्तित्व के लिए खतरा उत्पन्न हो गया, किन्तु नवगीतकारों ने इस चुनौती का सामना किया और सिद्ध कर दिया कि आधुनिक बोध, बौद्धिक चिन्तन, एवं जीवन के यथार्थ चित्रण की दृष्टि से 'नवगीत' किसी भी ओर से पीछे नहीं है । वह हर तरफ से समृद्ध है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नवगीत अपनी विकास-यात्रा में छायावाद से चलकर मार्ग में पड़ने वाले अनेक वादों - व्यक्तिवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता आदि से गुजरता हुआ स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ा है । इसलिए हम नवगीत में आधुनिक काव्य की विभिन्न विशेषताओं का समन्वय सहज, स्वाभाविक रूप से देखते हैं । प्रगतिवाद, प्रयोगवाद की तरह वह यकायक आरोपित 'वाद' नहीं है, अपितु वह सहज, स्वाभाविक रूप में विकसित हुआ है । इसलिए उसकी जड़ें बहुत गहरी हैं, और वह अधिक स्थिरता, गम्भीरता एवं स्थायित्व प्राप्त कर सका है ।

'नवगीत' का प्रारम्भिक रूप निराला के अन्तिम चरण के गीतों में सहज ही देखा जा सकता है । आगे सप्तकीय और नये कवियों के गीतों से होता हुआ यह क्रम आज भी प्रगति पथ पर गतिमान है । नयी कविता के साथ ही साथ नवगीत-सृजन भी होता रहा है । चाहे भले नवगीत की विशिष्ट सत्ता की खोज और स्थापना के प्रयत्न ६० के दशक में आरम्भ हुए । 'नयी कविता' के आरम्भ से 'नवगीत' का अलग कोई आन्दोलन वर्तमान नहीं था, क्योंकि नवगीत नयी कविता से अभिन्न था, किन्तु जब 'नयी कविता' के ठेकेदारों ने गीत को काव्य-क्षेत्र से ही बहिष्कृत करने का प्रयास आरम्भ कर दिया तो इससे गीतकारों के आत्मसम्मान को गहरी ठेस पहुँची और उन्होंने भी पूरी शक्ति से 'गीति काव्य' को 'नवगीत' के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए दृढ़ संकल्प कर लिया । निश्चय ही 'नयी कविता' के पुरोधाओं द्वारा चुनौती न मिली होती तो 'नवगीत' शायद ही कभी संगठित शक्ति के रूप में उभरकर सामने आता । इस तथ्य को रेखांकित करते हुए डॉ. शम्भुनाथ सिंह लिखते हैं - "नयी कविता के कवियों ने गीत-रचना को पिछड़ेपन की निशानी मानकर उससे स्वयं को पूर्णतः विच्छिन्न कर लिया ।..... नवगीत न कभी काव्यान्दोलन था, न आज है । वह तो नयी कविता का जुड़वा भाई है, जिसे नयी कविता ने वयस्क होकर साजिश द्वारा अपने शिविर से बहिष्कृत कर दिया । इस तरह 'नवगीत' का रास्ता 'नयी कविता' के रास्ते से अलग हो गया ।"[१] डॉ. सिंह के इस वक्तव्य से स्पष्ट होता है कि नयी कविता के द्वारा किये गये बहिष्कार का कितना गहरा आघात गीतकारों के मन पर लगा, किन्तु मेरे विचार से नवगीत के भावी विकास की दृष्टि से यह अच्छा ही हुआ, क्योंकि

इससे उसे नयी कविता की संकीर्ण सीमाओं एवं दूषित प्रवृत्तियों से मुक्त होकर बाहर निकलने का सुअवसर मिला।

यद्यपि 'नयी कविता' के समानान्तर 'नया गीत', 'आधुनिक गीत', 'नयी कविता का गीत', 'आज का गीत' आदि की चर्चाएं छठे दशक के आरम्भ से ही यत्र-तत्र होने लग गयी थीं किन्तु इसकी सुस्पष्ट रूप में घोषणा सन् १९५७ ई. में ही हुई जब इलाहाबाद के साहित्य सम्मेलन की कविता गोष्ठी में वीरेन्द्र मिश्र ने 'नयी कविता : नया गीत : मूल्यांकन की सीमाएँ' शीर्षक निबन्ध को पढ़ते हुए घोषित किया - ''हिन्दी में नये गीत का जन्म हुआ है । यह नया गीत फार्म और कन्टेन्ट दोनों ही पक्षों में समृद्ध हुआ है । यह विचारणीय है कि आज की विज्ञप्त साहित्यिक शैलियों की चकाचौंध में कहीं हम गीत की दिशा में सम्पन्न हो रहे प्रयोगों तथा जागरूक विचार-शक्ति को भुलाये नहीं दे रहे हैं ।''[२] इस घोषणा को ठोस आधार प्रदान करने का श्रेय राजेन्द्र प्रसाद सिंह को जाता है, जिन्होने फरवरी १९५८ ई. में अपने द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित रचना 'गीतांगिनी' में आधुनिक युग के कुल ७४ कवियों के गीतों को संकलन का रूप प्रदान करते हुए इसे 'नवगीत-संकलन' की संज्ञा दी । इसकी भूमिका में 'नवगीत' के विभिन्न पक्षों पर विचार करते हुए इन्होने स्पष्ट किया कि, 'प्रारम्भ में नवगीत आधुनिकता की चुनौती का सामना करने की प्रेरणा से 'नयी कविता का पूरक बनकर ही साहित्य क्षेत्र में अवतरित हुआ था' । भूमिका मे तत्कालीन गीत-काव्य की स्थिति का विवेचन करते हुए सम्पादक ने गीतकारों को परम्परागत सीमाओं से युक्त होने के लिए प्रेरित किया है और 'नवगीत' के आदर्श रूप का भी संकेत संक्षेप में दिया गया है - ''समकालीन हिन्दी कविता की महत्वपूर्ण और महत्वहीन रचनाओं के विस्तृत आन्दोलन में गीत-परम्परा 'नव-गीत' के निकाय में परिणति पाने को सचेष्ट है। 'नवगीत'-नयी अनुभूति की प्रक्रिया में संचयित मार्मिक समग्रता का आत्मीयता पूर्ण स्वीकार होगा, जिसमें अभिव्यक्ति के आधुनिक निकायों का उपयोग, नवीन प्रविधियों का संतुलन होगा ।''[३]

उक्त वक्तव्य को हम 'नवगीत' का संक्षिप्त घोषणा-पत्र मान सकते हैं जिसमें इसकी विभिन्न विशेषताओं का समावेश संकेतात्मक रूप में हो गया है । अस्तु 'गीतांगिनी' के सम्पादक ने न केवल 'नवगीत' संज्ञा को सम्यक् रूप से प्रतिष्ठित कर उसे सुदृढ़ आधार प्रदान किया, अपितु उसने उसके विकास की भावी दिशाओं एवं नवीन मार्गों का भी संकेत स्पष्ट रूप से दिया है । अतः यदि 'नवगीत' की प्रतिष्ठा का श्रेय श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह को दिया जाय तो अनुचित नहीं होगा ।

आगे चलकर 'नवगीत' का प्रचार-प्रसार विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, गोष्ठियों आदि के माध्यम से तीव्र गति से हुआ । १९६२ में 'वासन्ती' पत्रिका में 'नये गीत : नये स्वर' लेखमाला का प्रकाशन हुआ तो 'वातायन' ने तीन वर्षों (१९६४, ६५, ६६) तक गीत-विशेषांकों का प्रकाशन किया । इनके अतिरिक्त 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'माध्यम', 'उत्कर्ष', 'गीत', 'लहर', 'कल्पना', 'ज्ञानोदय' आदि पत्र-पत्रिकाओं में भी सन् १९६४ से १९६७ की अवधि के दौरान नवगीत-सम्बन्धी अनेक लेख प्रकाशित करके इसे बहुचर्चित बनाये रखा । इसी कालावधि में 'प्रज्ञा' (दिल्ली), 'साहित्यिकी' (कलकत्ता), 'रंगायन' (बम्बई) आदि संस्थाओं ने भी नवगीत पर अनेक गोष्ठियों का आयोजन कर नवगीत की चर्चा को आगे बढ़ाने में योग दिया । साथ ही विभिन्न गीतकारों के निजी गीत-संकलनों तथा 'कविता-१९६४', 'गीत-१' (१९६६ ई.), 'गीत-२' (१९६७ ई.) और 'पांच जोड़ बाँसुरी' (१९६८) आदि समवेत संकलनों

से भी 'नवगीत' को बल मिला । इन सभी माध्यमों से 'नवगीत' का स्वच्छ एवम् स्पष्ट रूप सामने आया और नये प्रयोगों से युक्त नये भाव-बोध के गीत अधिक संख्या में प्रकाशित होने लगे । परिणामतः 'नवगीत' का मौन आन्दोलन अपनी चरम स्थिति में पहुँच गया और 'नयी कविता' के एक स्वतंत्र एवं शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी के रूप में साहित्य क्षेत्र में वह प्रतिष्ठित हो गया ।

निराला ने गीत-विधा में जो नये प्रयोग किये, वे ही कालान्तर मे 'नवगीत' के उद्गम स्रोत साबित हुए । उनके अधिकांश गीतों में वे विशिष्टताएँ, अन्तर्वस्तु और तेवर विद्यमान हैं जो भविष्य में नवगीत की सार्थक पृष्ठभूमि बनते हैं । वरिष्ठ नवगीतकार डॉ. शम्भुनाथ सिंह ने निराला की 'मातृ-वन्दना' (१९२०) तथा 'शेष' (१९२१) की रचनाओं में नवगीत के प्रारम्भिक झलक की चर्चा की है । हालांकि उनका यह भी मानना है कि, छायावादी भाषा, तटस्थ जीवन-दृष्टि तथा आध्यात्मिक संस्पर्श के कारण ये रचनाएं विशुद्ध रूप से 'नवगीत' की परिधि में नहीं आ सकीं । शुद्ध लौकिक, मानवीय अनुभूति से सम्पन्न, जन-सामान्य की भाषा-बोली में जीवनगत यथार्थ को रेखांकित करने वाले गीत ही 'नवगीत' के निकट माने गये । ऐसे गीतों का आरम्भ 'बेला' (१९४३) संग्रह से माना जाता है। चन्द्रदेव सिंह ने भी 'नवगीत' की शुरूआत निराला के 'बाँधों न नाव इस ठाव बन्धु' (१९५०) तथा 'आज मन पावन हुआ है' (१९५१-५२) आदि गीतों से माना है । दूसरी ओर डॉ. शम्भु नाथ सिंह यह भी मानते हैं कि, "यदि परम्परागत भाषा, घिसे-पिटे छन्दों और भावों के प्रति विद्रोह करके आम जनता की भाषा में बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से यथार्थ जीवन के कटु एवं तिक्त अनुभूतियों को 'नवगीत' की मौलिक पहचान मान लिया जाय तो नवगीत का प्रारम्भ सन् १९२०-२१ में ही हो गया था, जब निराला के गीत-'मातृ वन्दना' और 'शेष' प्रकाशित हुए थे ।"[४] किन्तु निराला के सम्पूर्ण गीत-रचनाओं के अध्ययन से हमें पता चलता है कि, 'अभी न होगा मेरा अन्त' (१९२४), 'आये धन पावस के' (१९२९), 'रूखी री यह डाल' (१९३२), तथा 'दलित जन पर करो करूणा' (१९३९) आदि गीत भी, जो छायावादी कालावधि में लिखे गये, हिन्दी-काव्य-प्रासाद में 'नवगीत' की साफ-साफ दस्तक देते हैं । ये गीत 'कथ्य' और 'शिल्प' दोनों ही स्तरों पर पारम्परिक गीत से बिल्कुल भिन्न थे । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि निराला के आरम्भिक गीत-संकलनों ने 'नवगीत' की भूमिका निर्मित कर दी थी ।

कई गण्यमान्य समीक्षक-कवि 'नवगीत' के निराला से प्रारम्भ होने की मान्यता को अनुचित मानते हैं । इनमें डॉ. विश्वनाथ प्रसाद, श्री सत्य नारायण, डॉ. उमाकान्त मालवीय, धनंजय आदि प्रमुख हैं। डॉ. विश्वनाथ प्रसाद इसकी कड़ी आलोचना करते हुए कहते हैं - "निराला के गीतों में बदलाव है, लेकिन वह 'नवगीत' नहीं है । 'मैं अकेला' या 'बाहर मैं कर दिया गया हूँ' जैसी नितान्त वैयक्तिक रचनाओं में नवगीत को नहीं ढूँढ़ा जा सकता । इसलिए सन् १९५० से नवगीत को लेजाकर निराला अथवा किसी बड़े रचनाकार से जोड़ना एकदम गलत है ।"[५] इसी प्रकार डॉ. उमाकान्त मालवीय की प्रतिक्रिया है - "निराला में 'नवगीत' खोजना वह आर्यसमाजी प्रवृत्ति है जो हर उपलब्धि का उत्स वेद में देखती हैं ।"[६] डॉ. धनन्जय ने भी 'नवगीत' को निराला तक खींच लेजाने की प्रवृत्ति को हास्यास्पद माना है - "नवगीत के तत्व खोजने में निराला के काव्य तक की छानबीन की गई है। छायावाद और छायावादोत्तर युग से इसका विकास दिखाया गया है । सूची बनाने वालों ने कोताही

की, थोड़ा और जोर मारते तो तुलसीदास तक में नवगीत के विकासात्मक तत्वों को खोज सकते थे।''[७] श्री सत्य नारायण भी 'नवगीत' के निराला से अविर्भूत होने की मान्यता की कड़ी आलोचना करते हैं और इसे भ्रमित मानसिकता का परिणाम ठहराते हैं ।[८]

'नवगीत' के अविर्भाव की तलाश में समीक्षकों-विद्वानों की दृष्टि बार-बार निराला के गीतों की ओर गयी है । 'मैं अकेला', 'स्नेह निर्झर बह गया है', 'आ रही / मेरे दिवस की साँध्य बेला', 'बाँधो न नाव इस ठाँव बन्धु' आदि गीतों को प्रायः नवगीत के 'उद्गम-स्रोत' सदृश उल्लिखित किया गया है । अनेक आपत्तियों के बावजूद 'निराला' ही 'नवगीत' के प्रणेता माने गये हैं । यह बात और है कि परिवेशगत यथार्थ के दबाव से नवगीत-कवियों द्वारा लिखे गये गीत निराला के गीतों से भिन्न स्वभाव के हैं । गीत या नवगीत वास्तविक भाव-चेतना के वाहक हैं, यह स्वतः सिद्ध है । किन्तु लम्बी अवधि तक इन गीतों को काव्यधारा की विशिष्ट उपलब्धि माना जाना तो दूर, समीक्षणीय अवमानना एवं उपेक्षा का शिकार होना पड़ा है । किसी भी साहित्यिक प्रवृत्ति के अविर्भाव की, इतिहास की भाँति कोई विशेष तिथि नहीं दी जा सकती, 'नवगीत' भी इसका अपवाद नहीं है । किंतु कई विद्वानों ने पारम्परिक तर्ज पर ही नवगीत को भी तिथियों की परिधि में बाँध रखा है । डॉ. सत्येन्द्र शर्मा अपने शोधात्मक ग्रन्थ 'नवगीत : संवेदना और शिल्प' में 'नवगीत' के काल-निर्धारण और विकास-यात्रा के काल-विभाजन के सम्बन्ध में उपर्युक्त तथ्य स्वीकार करते हुए भी कहते हैं - ''यह अवधि काव्याकाश में नवगीत के अवतरण की है, जिसे मैंने 'प्रयोगभूमि' कहा है ।''[९]

इस शोध-ग्रन्थ में डॉ. सत्येन्द्र शर्मा ने नवगीत की सम्पूर्ण 'विकास-यात्रा' को चार भागों में विभाजित किया है - प्रयोग भूमि (१९२५-५०), प्रशस्त भूमि (१९५१-६५), प्रकर्ष भूमि (१९६६-८० ई.) तथा प्रकीर्ति भूमि (१९८१-अद्यतन) । अस्तु इस सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभद हैं । कुछ लोग 'नवगीत' का प्रारम्भ १९५८ ई. (गीतांगिनी की प्रकाशन तिथि) से मानते हैं । कुछ समीक्षक इसकी शुरूआत 'वंशी और मादल' (१९५१) से मानते हैं । डॉ. शम्भुनाथ सिंह नवगीत का आरम्भ १९३५ (निराला के छायावादी गीतों) से मानते हैं । १९३५ से १९८५ तक के पचास वर्षों में लिखे गये नवगीत को उन्होंने चार विकासात्मक चरणों में विभाजित किया है - प्रथम चरण (१९३५-५०), द्वितीय चरण (१९५१-६०), तृतीय चरण (१९६१-७०) तथा चतुर्थ चरण (१९७१-८५) ।

साहित्य में कोई भी काव्य-प्रवृत्ति अपने नाम व प्रकृति-मानकों की उद्घोषणा करते हुए अस्तित्व में नहीं आती बल्कि काव्य-सृजन के आरम्भिक चरण में लक्षणों की पहचान तथा तद्नुरूप, कुछ अवधि पश्चात विशेष संज्ञा के साथ अस्तित्व में आती है । पारम्परिक गीत में स्पष्ट बदलाव को तो चौथे दशक से ही महसूस किया जाने लगा था किन्तु नवगीत के लक्षणों का निर्धारण व नामकरण बहुत विलम्ब से हुआ । नवगीत की विकास-यात्रा को यहाँ तीन पड़ावों के अन्तर्गत संयोजित कर विश्लेषित किया जा रहा है -

प्रथम पड़ाव :

छायावाद में आदर्शवादी दृष्टिकोण, रहस्यात्मक अनुभूति, कल्पना की अतिशयता और वायवी सौन्दर्यानुभूति, प्रेमजन्य सुख-दुःख के साथ घुलकर प्रसाद जी के गीतों में पहली बार मुखरित हुई थी । स्वभावतः

वे खड़ी बोली में नये गीतों के प्रथम 'सृष्टिकर्ता' हुए । निराला जी भी 'गीतिका (१९३६)' की भूमिका में लिखते हैं - ''खड़ी बोली में नये गीतों के भी प्रथम सृष्टिकर्ता प्रसाद जी हैं । उनके नाटकों में अनेक प्रकार के नये गीत हैं ।''[१०] किन्तु छायावाद के अन्तर्गत सर्वप्रथम महाप्राण निराला ने पारम्परिक गीतों के वस्तु, कथ्य एवम् शिल्प में, गीत विधा के विकास की असमर्थता एवम् अशक्तता का अनुभव कर गीतों के शिल्पिक विधान का पुनः संस्कार कर गीतों की खोयी हुई प्रतिष्ठा का पुनर्स्थापन किया था ।

गीत-शिल्पी डॉ. हरिवंश राय बच्चन कहते हैं - ''गीतों का दूसरा युग खड़ी बोली के उत्थान के साथ आरम्भ हुआ । इन पचास-साठ वर्षों में कविता के क्षेत्र में हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि गीतों के वृत्ति में ही हुई है । एक अनगढ़ भाषा को लेकर उसे गीत का माधुर्य देना बड़ा ही कठिन कार्य था ।''[११] इस कथन में आगे डॉ. बच्चन ने आधुनिक गीत के आधार तत्वों को इंगित किया है। किन्तु उपर्युक्त कथन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बिन्दु 'एक अनगढ़ भाषा को लेकर उसे गीत का माधुर्य देना' बतलाया है । निःसन्देह, तात्कालिक गीतकारों के समक्ष यह एक कौशल पूर्ण और चुनौती भरा कार्य था और यह कठिन कार्य (अनगढ़-भाषा को गीत के अनुरूप ढालने का कार्य) प्रसाद, निराला, महादेवी और पन्त कर रहे थे, किन्तु इससे भी अधिक जटिल कार्य गीत विधा को शिष्ट और सुसंस्कृत अभिजात्य वर्ग की चाहर दीवारी से निकाल कर 'गीत' को जन-जीवन के निकट, उनकी संवेदना-भूमि बनाने का महत्वपूर्ण कार्य निराला कर रहे थे ।

छायावादी रंगमहल के प्रमुख शिल्पियों-प्रसाद, निराला और महादेवी वर्मा ने गीत-विधा को अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम बनाया । प्रकृति प्रणय, करूणा, सौन्दर्य और समेकित स्वरों में रहस्यवादी संकेतों के कवि 'प्रसाद' की गीत-कला उत्कृष्ट रूप में 'लहर' में प्रकट हुई है । महादेवी की समग्र अभिव्यक्ति का एकाग्र माध्यम गीत ही रहा । इनका काव्य शताधिक गीतों का कोष है जिनमें विचार और अनुभूति की भावान्विति मिलती है । उनकी सुख-दुखमयी वैयक्तिक चेतना बौद्ध दर्शन का प्रभाव ग्रहण कर आध्यात्म और लोक साधना में परिणत हुई । न सिर्फ भाव, बल्कि शिल्प के स्तर पर भी इनके गीत-काव्य में एकरूपता नजर आयी । निराला छायावाद में ऐसे गीतरथी बनकर प्रस्तुत हुए जिन्होंने गीतों में विविध प्रयोग किये । छायावादी युग के एक अन्य शिल्पी 'पन्त' का काव्य प्रायः मुक्तक काव्य होते हुए भी पारम्परिक गीत-विधा से दूर है । यहाँ यह ध्यातव्य है कि, महादेवी की वैयक्तिक चेतना की अभिव्यक्ति गीत में होना स्वाभाविक थी किन्तु प्रसाद और निराला की वैयक्तिक अनुभूति गीतों के अतिरिक्त जब 'कामायनी', 'आँसू' तथा 'राम की शक्ति-पूजा' व 'सरोज स्मृति' जैसी कथा-प्रधान प्रबन्ध- रचनाओं में व्यक्त हुई तब भी अभिव्यक्ति की अन्तःपरत गीतमय ही रही । कामायनी का 'इड़ा' सर्ग तो गीत-प्रधान है ही, पूरे प्रबन्ध में 'तुमुल कोलाहल कलह में हृदय की बात' कहते हुए स्वर में गीत की अन्तश्चेतना ही मुखरित हुई है । छायावादी गीत स्थूलतः मध्ययुगीन पदगीत-परम्परा की नूतन कड़ी है। विशेषकर प्रसाद, महादेवी और पन्त के गीत अंग्रेजी रोमान्टिक कवियों वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स, वायरन आदि की रचनाओं से प्रभावित प्रतीत होते हैं, स्वभावतः ये गीत शिल्प और भाव-धारा में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति लिये हुए हैं ।

छायावादी गीतों में व्यक्तिगत जीवन के सुख-दुख के अतिरिक्त राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य की आकाँक्षा और भारतीय पुनर्जागरण का गम्भीर स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ता है । शिल्प के स्तर पर ये गीत पारम्परिक गीतधारा में अग्रिम कड़ी बनकर नये कलेवर लिये हुए थे, किन्तु ये 'नवगीत' नहीं 'आधुनिक गीत' कहे जाते थे ।

यहाँ मेरा अभिष्ट छायावादी गीत-काव्य की प्रवृत्ति का विश्लेषण नहीं, वरन् इस काव्य-सरणि के गीतों में 'नवगीत' की पदचाप को रेखाँकित करना है । नवगीत की यह पदचाप निराला के गीतों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है । निराला के गीतों का भाव-फलक न सिर्फ बहुआयामी और विस्तृत है, उसमें न सिर्फ संघर्षरत आम जन की धड़कनें ध्वनित हैं, बल्कि उनकी सर्जना के केन्द्र में अवधी और ब्रज का लोकजीवन भी है, जिससे उनके गीत एक विशेष भाव-भूमि की अपेक्षा जन-साधारण की विचारभूमि के संवाहक बने । उनके गीत जटिल होते जा रहे जीवन की गहन अनुभूति लिए सुख-दुःख, राग-विराग, छल-प्रवंचना, मानव-मन का अन्तर्विरोध, सामाजिक विषंगति, वैषम्य, अभाव, पीड़ा, शोषण, हार-जीत आदि विविध आयामों के साथ समकालीन काल-बोध से अधिकाधिक सम्पृक्त होने के कारण पारम्परित गीत में एक नूतन प्रयोग करते मिले । छन्द मुक्ति के क्रान्तिकारी और ऐतिहासिक दायित्व का निर्वाह कर नित नये राह और अभिनव लीक के अन्वेषी 'निराला' में गीत की अनेकविध रूपाकृतियाँ देखने को मिलती हैं ।

निराला की गीति-शैली के स्वरूप का अध्ययन प्रकारान्तर से छायावाद में नवगीत के आचरण को पहचानने का उपक्रम करना है किन्तु यहाँ हमारा प्रतिपाद्य निराला के गीत-काव्य का विश्लेषण न कर उनके गीतों में उन बीज तत्वों की पहचान को रेखांकित करना है जो छायावादोत्तर गीतकाव्य में 'नवगीत' के रूप में विकसित और पल्लवित हो सके । उनके अधिकांश गीतों में वह अन्तर्वस्तु और तेवर विद्यमान है जो भविष्य में नवगीत की सार्थक पृष्ठभूमि बनते हैं । निराला के अनेक गीत प्रारम्भ से ही वस्तु-चेतना में छायावादी भाव-भूमि से बिल्कुल अलग थे । ऐसे गीतों में भी छायावादी भाषा-आभिजात्य से बचा नहीं जा सका है, किन्तु ऐसे गीतों में वस्तु-तत्व के अनुरूप भाषिक अभिजात्य से मुक्ति का प्रयास भी साफ झलकता है । निश्चय ही यह कहना गलत और अनुचित होगा कि, उनके सभी गीत नवगीत की पृष्ठभूमि हैं, किन्तु उनके अनेक गीत छन्द-संरचना की नयी-तकनीक भावस्तर पर यथार्थोन्मुख जीवन की अभिव्यक्ति और सहज भाषा-विन्यास के कारण नये ढंग के गीतों का श्री गणेश करते हैं । अतः यहाँ मेरा अभीष्ट निराला के गीतों में नवगीत की पहचान स्थापित करना कदापि नहीं बल्कि काल-क्रम की दृष्टि से 'नवगीत' के आरम्भिक पदचाप की पहचान करना है ।

डॉ. शम्भुनाथ सिंह ने निरालाकृत 'मातृवंदना' और 'शेष' गीतों को 'नवगीत' का प्रस्थान-बिन्दु माना है और इस आधार पर इनका प्रारम्भकाल (१९२०-२१ ई.) माना है । निराला के गीत-संकलन 'अपरा' में इनका रचनाकाल क्रमशः १९२० तथा १९२१ उल्लिखित है किन्तु निराला रचनावली-१ में इन गीतों की प्रकाशन तिथियाँ क्रमशः १९२६ तथा १९३१ ई. दी हुई हैं । शम्भुनाथ सिंह तथा चन्द्रदेव सिंह ने निराला के जिन गीतों को प्रायः नवगीत माना है, उसके पीछे उनका प्रमुख आग्रह संभवतः 'भाषा' की सहजता' का है - ''यदि परम्परागत भाषा, घिसे-पिटे छन्दों और भावों के प्रति विद्रोह करके आम जनता की भाषा में बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से यथार्थ जीवन की कटु, तिक्त अनुभूतियों

और मानवीय दशाओं की अभिव्यक्ति को नवगीत की मौलिक पहचान मान लिया जाय तो नवगीत का प्रारम्भ सन् १९२०-२१ में ही हो गया था, जब निराला ने 'मातृ वंदना' और 'शेष' आदि गीत लिखे थे ।''[१२]

वास्तविकता जो भी हो किन्तु यह स्पष्ट हो चुका है कि 'नवगीत' का आभास तीसरे दशक के आरम्भ से ही मिलने लगा था । निराला की आरम्भिक गीत रचनाओं 'मातृवंदना (१९२०)', 'शेष (१९२१)', 'अधिवास (१९२३)', 'गए रूप पहचान (१९२३), 'क्या दूँ' तथा 'ध्वनि' (१९२४)', 'अभी न होगा मेरा अन्त (१९२४)', पतनोन्मुख (१९२५)', 'परिमल (१९२९)' 'आये घन पावस के (१९२९)', 'रूखी री यह डाल (१९३२)', 'रे कुछ न हुआ तो क्या (१९३४)', 'दे मैं करूँ वरण (१९३५)', मैं रहूँगा न (१९३६)', 'लाज लगे तो (१९३७)', 'गीतिका (१९३६)', संग्रह 'आवेदन (१९३७)', 'अनामिका (१९३९)', संग्रह 'दलित जन पर करो करुणा (१९३९)' आदि गीत जो ठीक छायावादी कालावधि में लिखे गये, हिन्दी काव्यप्रासाद में 'नवगीत' की साफ-साफ दस्तक देते हैं । तीसरे और चौथे दशक में लिखे गये निराला के ये गीत 'कथ्य' और 'शिल्प' दोनों स्तरों पर पारम्परिक गीत से बिल्कुल भिन्न थे । उपर्युक्त सभी गीतों में आध्यात्म और प्रकृति के प्रच्छन्न सश्लिष्ट आवरण में संघर्षरत मनुष्य का स्वाभिमान, जिजीविषा, आत्माभिव्यक्ति वर्षा गीत में प्रकृति का उल्लास, उद्दाम शृंगार, सम्पूर्ण धरित्रि में यौवन का वेग, विजय का भाव और अन्ततः लोकगीत की तर्ज पर अद्भुत चित्रात्मकता का विन्यास है ।

निराला के उपर्युक्त सभी गीतों में 'नवगीत' की भूमिका स्पष्ट परिलक्षित होती है । 'पतनोन्मुख' गीत में पल-प्रतिपल जटिल होती जा रही तथा विषमताओं की ज्वाला में झुलसती जिन्दगी का बयान है । सारी बातें रागात्मक संयम के साथ प्रकृति-बिम्बों में कही गयी हैं । यह गीत अपने संक्षेप में राष्ट्रीय जन-जीवन के यथार्थ को व्यक्त करने की जो त्वरा लिये हुए है, वह भी प्रकृति के माध्यम से आगे आने वाले नवगीत का संकेत है -

**''हमारा डूब रहा दिनमान
मास-मास दिन-दिन प्रतिपल
उगल रहे हो गरल-अनल
हिम-हत पातों-सा असमय ही
झुलसा हुआ शुष्क निश्चल
विकल डालियों से
झरने ही पर हैं पल्लव-प्राण
हमारा डूब रहा दिनमान ।''**[१३]

इस गीत में तात्कालिक राष्ट्रीय जीवन में असहयोग आन्दोलन की असफल परिणति, कांग्रेस स्वराज्य दल में गहरा आपसी मतभेद, और सबसे बढ़कर दिल्ली, नागपुर, लखनऊ, शाहजहाँपुर, इलाहाबाद और जबलपुर में हिन्दू-मुस्लिम के मध्य हुए साम्प्रदायिक दंगों की पृष्ठभूमि है । तीसरे दशक के उत्तरार्द्ध (१९२९ ई.) में लिखा गया निराला का गीत 'छोड़ दो जीवन यों न मलो' नवगीत के आगामी रचना-

विधान और वस्तु-चेतना को पूर्णतः संकेतित करता है -

"छोड़ दो जीवन यों न मलो
ऐंठ अकड़ उसके पथ से तुम
रथ पर यों न चलो
वह भी तुम ऐसा ही सुन्दर
अपने दुख-पथ का प्रवाह खर
तुम भी अपनी ही डालों पर
फूलो और फलो ।"[१४]

जन-सामान्य की सीधी-सादी बोलचाल की भाषा में पैसे के बल पर ऐंठ-अकड़ कर चलने वालों को चेतावनी, आमजन की पक्षधरता और वर्ग-वैषम्य का समाजघाती परिणाम और बेहतर समाज की रचना का संकल्प आदि भी नवगीत की 'मूल चेतना' है । छन्द-विधान भी पारम्परिक गीतों से पर्याप्त भिन्न हैं । आत्मीय सम्बोधन का लहजा भी नवगीत की चेतना में सन्निहित है । 'वसन वासन्ती लेगी' निराला का 'प्रबन्ध-गीत' है । इसमें एक भावस्पर्शी मनोरम, उदात्त आध्यात्म-कथा का विन्यास है । निराशा की बाह्य आवरण के भीतर अदम्य आशा का संचार और गहन एकाग्र साधना से विश्व कल्याण की कामना का मौलिक विश्वास इस गीत में सघनता से व्यक्त हुआ है । 'आवेदन' गीत में काव्य-देवता की आनन्दमूलक शक्ति पर निष्ठा व्यक्त करने के अतिरिक्त 'समुदाय' की हित अभिलाषा मनोवांछित है । 'दलित जन पर करो करूणा' का भाव अत्यधिक मुखर है । दर असल, कवि की विचार-भाव निधि उसकी सामाजिक चेतना की समृद्धि या विस्तार है । सामाजिक चेतना का विस्तार जनतान्त्रिक मूल्यों के लिए अनथक लगातार संघर्ष से होता है । सामाजिक यथार्थ से जुड़ा यह आत्म-संघर्ष ही काव्य में एक ऐसे सश्लिष्ट चित्र को प्रस्तुत करता है जहाँ निजी एकान्त-साधना की आकांक्षा सम्पूर्ण सृष्टि-हित को फलीभूत देखने को उत्सुक है -

"दलित जन पर करो करुणा
दीनता पर उतर आये
प्रभु, तुम्हारी शक्ति अरुणा
हरे तन-मन प्रीति पावन
मधुर हो मुख मनोभावन
सहज चितवन पर तरंगित
हो तुम्हारी किरण तरुणा ।"[१५]

निराला के इस सहज भावानुभूति वाले गीत में व्यष्टि और समष्टि का स्वरूप अभिव्यक्त किया गया है । उपर्युक्त सभी प्रवृत्तियों का 'नवगीत' में विकसित होना अकारण नहीं है । रचना प्रक्रिया की इसी कालावधि में 'उक्ति (१९३७)', 'मरण दृश्य, प्राप्ति, गीत (१९३८)', 'बहती निराधार, चाल ऐसी मत चलो, टूटे सकल बन्ध (गीतिका-१९३६)' आदि गीतों का शिल्प विशेष रूप से विचारणीय है जिसका बहुविध छन्द-विधान नवगीत की प्रेरणा-भूमि है । वास्तव मे निराला के शुद्ध, लौकिक,

मानवीय अनुभूतियों से सम्पन्न, जन-सामान्य की भाषा में जीवन के यथार्थ को व्यक्त करने वाले गीत ही नवगीत के निकट माने गये । अधिकांश विद्वान ऐसे गीतों का रचना काल 'बेला (१९४६)' संग्रह से मानते हैं । किन्तु निराला के आरम्भिक गीतों में (तीसरे दशक के मध्य में) ही 'नवगीत' का व्यक्तित्व भाषित मिलता है ।

निराला के गीत-संग्रह 'अणिमा (१९४३)' के 'मैं अकेला (१९४०)', 'गहन है यह अन्धकारा, स्नेह निर्झर बह गया, मरण को जिसने वरा है (१९४२)' गीतों की वस्तु-चेतना नवगीत में प्रसार पा गई । तत्पश्चात 'बेला (१९४६)' तथा 'नये पत्ते (१९४६)' की गीत-चेतना 'नवगीत' में अधिकाधिक पुष्ट और प्रसवित हुई है । यद्यपि नवगीत को लोक-जीवन की उष्मा और मिट्टी की सोंधी खुशबू की काव्यात्मक शक्तिमत्ता की प्रेरणा पंडित माखन लाल चतुर्वेदी से ही प्राप्त हुई । लोकभाषा की ठेठ आँचलिक शब्दावली उनके गीतों में ऐसी जीवन्तता और नवीनता या ताजगी उत्पन्न करती है कि सहृदय-मन उस भाषा-विन्यास के अकृत्रिम या स्वाभाविक सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है । लोकगीतों से ली गई धुनें और बिम्ब उनके गीतों को नवगीत बनाते हैं । कवि की राग-चेतना गीत को किस तरह लयात्मक और गेय बनाती है, यह उनके गीतों-नव गीतों को गुनगुना कर जाना जा सकता है । पाँचवे दशक के उत्तरार्द्ध तक लिखे माखनलाल जी के ऐसे गीत 'हिम-किरीटनी (१९४२)', 'हिम-तरंगिनी (१९४९)' और 'माता (१९५२)' में संग्रहीत हैं ।

छायावादोत्तर गीत-काव्य में लोकरंग की सर्वाधिक गहरी पहचान पण्डित माखन लाल चतुर्वेदी की रचनाओं में मिलती है । इनके गीतों में भारतीय अंचल की लोक-संवेदना स्वानुभूत सत्य के रूप में दृष्टिगोचर होती है । इनके गीतों में भारतीय अंचल का यथार्थ बोध, लोक-धुन, आंचलिक शब्दावली और लोक-प्रचलित पद-बन्धों तथा वाक्य-विन्यासों में अत्यधिक रसमयता, लोच और आत्मीयता की समायोजना प्राप्त होती है । यह 'भारतीयता' नवगीत की प्रमुख अभिव्यक्ति है, क्योंकि नवगीत के व्यक्तित्व का एक पहलू उसकी राष्ट्रीय संस्कृति से संलग्नता है । उनके लिखे गीत - 'भारतीय विद्यार्थी' की निम्न पंक्तियाँ इसकी प्रमाण हैं -

"रेल, तार, आकाश - यान ये हम क्या कभी बना न सकेंगे ?
शुद्ध स्वदेशी पीताम्बर क्या माधव को पहिना न सकेंगे ।।
पहले बाल भारत हो सिंहों के भी दाँत दबाना होगा,
पुनः भरत हो, बन्धुप्रेम पर अपनी भेंट चढ़ाना होगा ।"

पंडित माखन लाल चतुर्वेदी के अधिकांश गीतों की अन्तश्चेतना लोक-भूमि के यथार्थ से जुड़ी है । वे शुद्ध प्रकृति या मानव-सौन्दर्य-गीत मात्र नहीं हैं । उनकी गीत-गंगा में आध्यात्मिक प्रतीकों का जल लहरा रहा है । किन्तु ये आध्यात्मिक प्रतीक और चरित-नायक सम-सामयिक हालात के भोक्ता व कर्मी हैं । गीत की आध्यात्मिक शब्दावली के आवरण में जन-जीवन का यथार्थ विद्युत की भाँति कौंधता और सहृदय में गहरे संचरित हो जाता है । उनके एक गीत का यह अंश देखें, जिसमें 'नवगीत' की ध्वन्यात्मकता और आंचलिक शब्दावली की योजना विद्यमान हैं -

"जग आये घनश्याम देख तो

देख गगन पर आगी
तूने बूँद, नींद खेतिहर ने
साथ-साथ ही त्यागी
रही कजलियों की कोमलता
झंझा को वर री
बदरिया थम-थम कर झर री ।"[१६]

यहाँ वर्षा-गीत के प्रकृति-चित्र में जनजीवन की कौंध अभिव्यञ्जित हुई है । पंडित माखन लाल के अधिकांश गीतों में समाविष्ट अन्तःचेतना लोक-भूमि के यथार्थ से जुड़ी है । उनके 'संपूरन के संग अपूरन झूला झूले री (१९५०)', 'सिर पर पाग पाग हाथों में (१९५७)', 'बिजुरी काजल आँज रही (१९५७)', 'वेणु लो गूँजे धरा (१९५९)', 'तुम न हुए घर मेरे, मानस के पंछी तथा अंधियारे के उजाले से (१९५९)' आदि गीत 'नवगीत' के वस्तु-तत्व के अत्यधिक निकट प्रतीत होते हैं ।

छायावादी गीत को 'भाषा' और 'वस्तु' दोनों स्तरों पर नया मोड़ देने वाले बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के गीत भी प्रथम चरण के सोपान बने । 'नवीन' ने भी स्वर्गीय सौन्दर्य, काल्पनिकता, रहस्य-लोक और प्रेम के उलझाव को भेदकर छायावादी भौतिक अथवा साँसारिक जीवन के नग्न सत्य, कड़वाहट, अनुभूति और कटु यथार्थ को तीक्ष्ण शब्दों में व्यक्त किया । इन गीतों का वैशिष्ट्य सामान्य बोलचाल की भाषा में 'लोक-सत्य' को अभिव्यक्ति देना है । इनकी सहज एवं सरल शैली, लोक-सन्दर्भ, लोक-जीवन की गहरी हिस्सेदारी पाठक के साथ अनौपचारिक आत्मीय संवाद से जोड़ती है । लोक-सन्दर्भों की यह पकड़ लोक-जीवन के साथ गहरी हिस्सेदारी के कारण बनती है । गीतों मे आंचलिक पदावली, देशज शब्दों का बाहुल्य, कहने की प्रत्यक्ष पद्धति तथा व्याकरणिक दृष्टि से कारक चिन्हों और क्रियापदों का अभाव और कहने की प्रत्यक्ष पद्धति 'नवीन' और माखन लाल चतुर्वेदी में लगभग समान रूप से मिलती है । इसका एक सर्वज्ञात कारण यह है कि दोनों ही सार्वजनिक जीवन में वक्तृत्वकला के धनी थे और अभिव्यति में अनौपचारिक । स्वच्छन्दतावादी कवि नवीन जी की मूल चेतना 'गीतात्मक' थी, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उनका प्रबन्ध काव्य 'उर्मिला' है जो गीतपरक है । नवगीत की प्रेरणा बनने वाले 'नवीन' जी के गीत उनके संग्रहों - 'कुंकुम, रश्मि रेखा, अपलक (१९५१)' तथा 'क्वासि (१९५२)' में प्रकाशित है । आत्माभिव्यक्ति, आत्माभिमान, आत्मस्वीकार के साथ तात्कालिक राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन के विरले एहसास उनके गीतों में मुखरित हुए हैं । नवगीत की दृष्टि से संक्षेप की अपेक्षा विस्तार वृत्ति को छोड़कर उनके शेष रचनात्मक गुण नवगीत के बीज हैं । गीतों में विस्तार के बावजूद त्वरा में कमी नहीं है -

"अबतक इतनी यों ही काटी
अब क्या सीखें नव परिपाटी
कौन बनाये आज घरौंदा
हाथों चुन-चुन कंकड़ माटी
ठाठ फकीराना है अपना

बाघम्बर सोहे अपने तन
हम अनिकेतन, हम अनिकेतन ।"[१७]

नवीन जी के गीत-काव्य में एक ध्यानाकर्षक तथ्य यह है कि उनके प्रारम्भिक गीत नवगीत के जितने निकट हैं, उससे उतने ही दूर होते चले गये उनके परवर्ती (१९५१ के बाद के) गीत हैं। 'मछली-मछली कितना पानी (१९२५)', 'आज सुना है सखी, हमारे साजन लेंगे जोग री (१९३६)', 'डोला लिये चलो (१९३९)' तथा 'हम अनिकेतन' आदि रचनाएँ उनके प्रारम्भिक गीतों की श्रेणी में आती हैं ।

'नवगीत' में युग-जीवन का यथार्थ वर्ग-वैषम्य, निम्न वर्ग की पीड़ा और सबसे बढ़कर सहजता की प्रेरणा जिन गीतकारों से आयी, उनमें भगवती चरण वर्मा एक हैं । हालाँकि उनके गीतों की संख्या कम है, किन्तु अभिव्यक्ति की सहजता और परिवेश की विषंगतियों के विरुद्ध सामाजिक विद्रोह की भावना के लिए उनके गीत विशिष्ट पहचान बना सके हैं । 'मधुकण', 'प्रेम-संगीत', 'मानव' तथा 'एक दिन' उनके मुख्य काव्य-संग्रह हैं जिनमें ऐसे गीत संग्रहीत हैं ।

गोपाल सिंह नेपाली की भी गीतात्मक अभिप्रेरणा 'नवगीत' का प्रच्छन्न संदेश बनकर प्रस्तुत हुई है, 'कल्पना करो, नवीन कल्पना करो' गीत इस तथ्य का प्रमाण प्रस्तुत करता है । प्रकृति का उन्मुक्त सहज व नैसर्गिक स्वरूप मानवीय संवेदना में गहराई में जाकर काव्य-अभिव्यक्ति को नयी भंगिमा से अलंकृत करता है । उनकी 'यह घास नहीं है, पनप उठी मेरे जीवन की मधुर आस', जैसी सहज काव्योक्ति में प्रकृति के साथ न सिर्फ अपने स्वाभाविक तादात्म्य भाव को रेखांकित किया बल्कि यही सहजता उनकी भाषा का भी वैशिष्ट्य बनी । लयात्मकता, रसमयी (देशज) भाषा, छन्द की संगीतात्मक रचना और नये किन्तु बोधगम्य प्रतीक आदि प्रवृत्तियाँ उनसे नवगीत को प्राप्त हुईं । स्वतः स्फुरित भाव, यौवन का उन्मेष और कल्पना की नयी दीप्ति लिए उनके गीत 'उमंग (१९३४)' में प्रकाशित हुए । अनगढ़ प्रकृति का सहज सौन्दर्य, अनुरक्ति और मानवीय अनुभूति उनके 'पंछी (१९३४)' काव्य संग्रह में विशेष रूप से मुखरित हुआ है । प्रकृति के प्रशस्त साहचर्य से उद्भूत उनकी नवगीतात्मक अनुभूतियाँ 'दार्जिलिंग की बूँदाबाँदी', 'गंगा किनारे', जैसी रचनाओं तथा 'रागिनी (१९३५)', 'पंचमी (१९४२)' और 'कल्पना' तथा 'आंचल' आदि संकलनों में विशेष रूप से देखी जा सकती हैं ।

गीत की 'टेक्नीक' को लेकर सर्वाधिक नये-नये प्रयोग करने वाले गीतकारों में निराला के बाद 'बच्चन' माने जाते हैं । उनकी भाव-धारा का सातत्य तो एक-सा है, किन्तु शिल्प में निरन्तर नयापन रहा है । भाषा की दृष्टि से गीत को जनग्राह्य बनाने का श्रेयस्कर कार्य भी उन्होंने किया है । बच्चन ने गीत-रचना-संसार में चार महत्वपूर्ण कार्य किये हैं - गीत-भाषा को जन-जीवन के समीप लाये, नये छन्द (टेक, आरोह, अवरोह, लय) और अनुभूति की ताजगी दी, लोकधुनों और लोक-लय पर आधारित गीतों की रचना की तथा गीत में संवाद-योजना या बोलचाल की सृष्टि कर जन रुचि को आकृष्ट किया[१८]। यद्यपि नवगीत के लिए लोक-लय से अधिक जरूरी आधार लोक-जीवन की बहुआयामी प्रस्तुति थी और हमें यह स्वीकारने में संकोच नहीं होना चाहिए कि बच्चन के लोक-धुनों पर आधारित गीतों में भी जन-जीवन या लोकसत्य व्यक्त न हो सका । लोक-जीवन के मामले में उनकी दृष्टि का

विस्तार लोक-उत्सवों में गाये जाने वाले गीतों की लय और शब्दावली तक सीमित है । अन्य अर्थों में "उनके यहाँ अंचल का उल्लास, श्रृंगार, प्रेम के उच्छ्वास, माँसल सौन्दर्य तो दिखायी देता है किन्तु वहाँ का अभाव, शोषण, पीड़ा, अथक श्रम, गरीबी और उद्‌भट जन-जीवन नहीं मिलता ।"(१९) बच्चन जी के गीतों की सीमाएँ समग्रता से वंचित हैं । यह और बात है कि छायावादोत्तर गीत-काव्य को परिमाणात्मक रूप में सर्वाधिक समृद्ध करने वाले कवि 'बच्चन' हैं । 'निशा-निमन्त्रण (१९३७-३८)', 'एकान्त संगीत, आकुल-अन्तर (१९४३)' व 'सतरंगिनी' आदि अनेक गीत-संग्रह प्रकाशित हुए । इनके गीतों ने बोलचाल की भाषा और पाठक के साथ आत्मीय सम्बन्ध के कारण गीत को लोकप्रिय बनाने का महत्वपूर्ण कार्य किया । 'नवगीत' बोलचाल की आत्मीय शैली के ग्रहण के लिए बच्चन का आभारी हो सकता है । जहाँ तक 'वस्तु-तत्व' का प्रश्न है, नवगीत उनसे कोई प्रेरणा नहीं ले सका । छठें दशक के आरम्भ में अपनी मूल भाव-धारा (प्रणय-प्रेम) से किंचित 'धार के इधर-उधर (१९५७)' वे हटे और उन्हें पहली बार महसूस हुआ कि उनके अतिरिक्त भी संसार में व्याकुलता 'व्याकुल आज है संसार' है । छन्द के स्तर में भी आंशिक ही सही, नये प्रयोग देखने को मिले -

"नौ अगस्त
नौ अगस्त
देश चोट खा गिरा
अत्ति आपदा घिरा
और बन्द जेल में पड़े हुए वतनपरस्त ।"[२०]

'धार के इधर-उधर' की कुछेक रचनाओं का स्वर-राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य की चाह तथा नई चेतना का संदेश है, ऐसी रचनाओं को छोड़कर शेष गीत संग्रह कवि की प्रणयानुभूति और छुई-मुई जीवन के उपाख्यान हैं । लोक-धुनों पर आधारित बच्चन के सभी गीत 'त्रिभंगिमा (१९५८-६०)' और 'चार खेमे चौसठ खूँटे (१९६०-६२)' में संग्रहीत हैं । त्रिभंगिमा में संग्रहीत गीतों 'किसानिन का गीत' तथा 'धीमर की धरनी' में नवगीत की पूर्व छाया देखी जा सकती है । अन्ततः यह कहा जा सकता है कि लोकधुनों पर आधारित लोक-संवेदना और लोक-जीवन को प्रकट करने वाले उनके गीतों की संख्या काफी कम है और उनमें भी लोक-जीवन का वह दृश्य नहीं मिलता जो नवगीत का अभीष्ट है ।

जिन अन्य छायावादोत्तर गीतकारों की गीत-सृष्टि में पारम्परित गीत से भिन्नता और उनके किन्हीं-किन्हीं गीतों में नवगीत की पदचाप रेखाँकित की जा सकती है, उनमें नरेन्द्र शर्मा प्रमुख हैं । वे अपने रचनाकार को प्रेम, सत्य, शिव तथा सुन्दर पर आक्रमण करने वाले आततायी सर्पों के साथ आमरण संघर्ष में संलग्न बताते हैं । दूसरी ओर इसी संकलन के गीतों को 'एक क्षयग्रस्त युवा कवि के गीत' की स्वीकारोक्ति भी करते हैं । वे उत्तर छायावादी गीत-धारा को 'निराशावादियों' और 'नियतिवादियों' की सृष्टि मानते हैं 'जो वास्तविकता से दूर हटकर स्वयं को कल्पनाजन्य स्वप्नों में भुलाते रहे ।'[२१] नवगीत का धरातल यथार्थता के साक्षात्कार का है । यह तय है कि ये गीतकार नवगीत की पूर्व कड़ी नहीं हो सकते, किन्तु उनके चुनिन्दा गीतों में नवगीत का थोड़ा बहुत आभास देखा जा सकता है। उनके 'प्रवासी के गीत (१९३९)' में संकलित ५३ गीतों में केवल अधोलिखित गीत में शिल्प और

अन्तर्वस्तु की दृष्टि से नवगीत की झीनी अनुगूँज सुनी जा सकती है -

"डर न मन ।
असमय घिरे घन जो,
स्वयम् हट जायँगे,
फट जायँगे,
जब विष सदृश, वह वज्र उर का
निकल उल्कापात-सा, धँस जायगा सहसा धरा में ।
उपल दल गल जायँगे
तू डर न मन ।"[२२]

इसी प्रकार उनके 'प्रभातफेरी (१९५३)' के 'नाविक' गीत में यह प्रवृत्ति दर्शनीय है । इस छायावादी और उत्तर छायावादी अवधि में पंडित नरेन्द्र शर्मा के 'प्रवासी के गीत (१९३८)', 'पलाश वन (१९३९)' अग्निशस्त्र (१९५०)' तथा 'प्रभात फेरी (१९५३)' संग्रहों के गीतों में नवगीत के लिए छन्दों का वैविध्य तथा प्रकृति का भरपूर साहचर्य है ।

'तारसप्तक (१९४३)' का प्रकाशन छायावादोत्तर काव्येतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है । जिस 'तारसप्तक' को 'प्रयोगवाद' की शुरूआत और तदनन्तर 'नयी कविता' की प्रवेश भूमि माना गया, उसमें 'नवगीत' की पहचान ढूँढ़ना प्रकारान्तर से तात्कालिक काव्य-प्रवृत्ति की निष्पक्ष पड़ताल करना भी है। इस समवेत संकलन के सातों कवि यद्यपि कालान्तर में 'नयी कविता' के प्रतिष्ठित कवि हुए, किन्तु इनमें से कुछ रचनाकारों में नवगीत की छाया दिखाई पड़ती है । गिरिजा कुमार माथुर, राम विलास शर्मा व मुक्तिबोध ऐसे ही रचनाकार हैं ।

गिरिजाकुमार माथुर परिवर्तित भाव-बोध के सजग गीतकार हैं, जिनके गीतों ने नये-नये छन्द परिधान अपनाये जो पूर्णतः लयात्मक है । इसके अतिरिक्त भाषा, उपमान और बिम्ब सभी स्तरों पर नये प्रयोग उनके द्वारा किये गये । उनके गीतों में सांस्कृतिक भावभूमि या ऐतिहासिक-सांस्कृतिक दृष्टि का पुनः सर्जन भी नवगीत हेतु प्रेरक-बिन्दु है । तारसप्तक में प्रकाशित-'छाया मत छूना', 'आज है केसर रंग रंगे वन', 'नया कवि' आदि रचनाएँ नवगीत ही हैं । उनके काव्य संकलन 'मंजीर' (१९४१)' में व्यक्तिपरक अनुभूति और 'धूप के धान (१९५४)' तथा 'शिला पंख चमकीले (१९६१)' में प्रायः सामाजिक जीवन का यथार्थ गीतात्मक रूपाकृति में मुखर हुआ है ।

यों तो डॉ. राम विलास शर्मा ने कविताएँ कम लिखी हैं किन्तु गीतों की मात्रा और भी कम है । इसके बावजूद भी उनके गीतों में व्याप्त अवध का आंचलिक सौन्दर्य, हार्दिकता-वेग तथा वर्णनात्मकता आदि की प्रवृत्ति इस विधा को रचनात्मक किन्तु सांकेतिक मोड़ देने में समर्थ हुई । इस दृष्टिकोण से 'चाँदनी' और 'सिलहार' कविताएँ (तारसप्तक) उल्लेखनीय हैं । उनकी रचनाएँ 'रूपतरंग (१९४२)' में संग्रहीत हैं ।

'तारसप्तक' में मुक्तिबोध की लगभग सभी रचनाओं का छन्दबद्ध होना अकारण नहीं है, किन्तु

'छन्द' एकमात्र नवगीत का नियामक नहीं है, फिर भी 'मैं उनका ही होता' शीर्षक रचना 'नवगीत' का अच्छा स्वरूप है । तारसप्तक से अलग 'स्वप्न का प्यार (१९३६)', 'तुम देख चलो, दुःख-सुख, तुम मुझको मत छोड़ो (सभी १९३७)' 'ओ कलाकार (१९३९)', 'चार क्षणों का परिचय (१९३९)' तथा 'क्या तुम सह सकोगी (१९४४-४८) आदि नयी शैली, नयी संवेदना से युक्त गीतों में वे स्वयं को व्यक्त कर रहे थे । पाँचवे दशक के पश्चात वे गीतात्मक अभिव्यक्ति को त्याग छन्द विहीन और लम्बी-लम्बी रचनाएँ लिखने लगे थे ।

तारसप्तक में संग्रहीत 'जागते रहो' और 'पथहीन' भारत भूषण अग्रवाल की सशक्त नवगीत-रचनाएँ हैं । हालाँकि इनमें कवि का भाषा-अभिजात्य व सामासिक पदावली के प्रति मोह नवगीत की प्रकृति के विरूद्ध है किन्तु केवल इस कारण ही ये नवगीत के विधान से पृथक नहीं की जा सकतीं । किसी सीमा तक यही स्थिति अज्ञेय की रचना 'भादों की उमस' की है । प्रभाकर माचवे के तारसप्तक में प्रकाशित गीत 'प्रेम एक परिभाषा' तथा 'राही से' विशुद्ध नवगीत कहे जा सकते हैं ।

प्रयोगकाल के समानान्तर राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं से उद्वेलित, शोषण रहित नये मानवतावादी जीवन-आदर्शों से अनुप्राणित भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ (१९३६) के आह्वान से सहज परिचालित आंचलिक प्रकृति सौन्दर्य में रस-स्नात, तथा लोक-चेतना से सम्पन्न प्रवाहमान गीत काव्य के कुछ विशिष्ट गायक सर्व श्री शम्भुनाथ सिंह, विद्यावती कोकिल, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन व त्रिलोचन हैं जिनके गीतों में लोकत्व की सबलता का नयापन था और जिनसे 'नवगीत' ने वांछित दिशा पायी । किन्तु केवल दिशा ही पर्याप्त नहीं । क्योंकि विद्यावती कोकिल मंचीय चमक-दमक में खो गईं । केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन और त्रिलोचन में केवल केदारनाथ अग्रवाल ही गीत से नवगीत तक की यात्रा जारी रख सके । नागार्जुन के गीतों में उद्‌बोधनात्मक तत्व प्रमुख होता चला गया जो गीत-प्रकृति के अनुकूल न था । त्रिलोचन की मुख्य अभिव्यक्ति का माध्यम 'सॉनेट' बन गया ।

सामान्य जन-जीवन, अपनी धरती और अंचल से गहरी रागात्मकता और बोल-चाल की शब्द-सम्पदा से अविकल्प शब्द-चयन केदारनाथ अग्रवाल के नवगीतों की विशिष्ट पहचान है । लोक-अंचल, लोक-सम्पदा, प्रकृति और संघर्षरत आदमी के अनेक प्रेरक चित्र उनके गीतों मिलते हैं । उनके प्रारम्भिक नवगीत 'युग की गंगा', 'नींद के बादल' तथा 'लोक और आलोक' (सभी १९४७ में संग्रहीत हैं । इसी दौर में ग्रामीण जीवन के सहज उत्ताप से परिपूर्ण कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह का गीत संग्रह 'मेघमाला' भी प्रकाशित हुआ ।

श्री शम्भुनाथ सिंह उन विरले काव्य-यात्रियों में हैं जो सुदीर्घ गीत-यात्रा के कारवाँ में अपनी मौलिक पहचान लेकर चलते रहे हैं । उनके आरम्भिक गीत प्रकृति के नये बिम्बों और उपमानों के बावजूद 'जीवन गीत (१९४३)' की समय-चेतना से बेखबर 'किसी के रूप के बादल (१९४३)' में उलझे रहे । किन्तु यह दौर अधिक न चल पाया और इस (चौथे) दशक के अन्ततक 'जनधारा (१९४८)' की ओर मुड़ चले । 'रात बीत गई' और उनके काव्याकाश में नवगीत के सूर्य का उदय हुआ -

> "धरती पर विहग रचित
> गुँज रहे गीत हरित

बनकर चम्पई
जाड़े का मुखर प्रात
टन-टन कर बजे सात
एक साथ कई
रात बीत गई ।''[२३]

यद्यपि ऐसा नहीं है कि शंभुनाथ सिंह ने १९५० तक मात्र वैयक्तिक प्रवृत्ति के गीत गाये हैं, बल्कि 'उदयाचल (१९४१-४६)' के गीत कवि के तात्कालिक भावचेतना के विस्तार के प्रमाण हैं । किन्तु जहाँ तक नवगीत की विकास-यात्रा का प्रश्न है, वहाँ उनके छठे दशक के गीत अधिक महत्वपूर्ण हैं ।

शमशेर बहादुर सिंह यद्यपि नयी कविता के प्रयोगधर्मी कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं किन्तु अपने काव्य-यात्रा के आरम्भिक अवधि में कुछ अच्छे गीत भी उन्होंने लिखे हैं । उनका गीत 'प्रेम की पाती' नवगीत-प्रकृति के सर्वाधिक निकट है । और ऐसे गीत उन्होंने बहुत कम लिखे हैं । 'नवगीत' रूप में ढ़लती रचना का सबसे प्रमुख व्यवधान 'जटिल बिम्ब-विधान' और 'भाषा अभिजात' का है। शमशेर जी न सिर्फ क्लिष्ट बिम्ब-रचाव के आदी हैं, बल्कि सामान्य शब्दावली के प्रयोग के बावजूद अभिव्यक्ति की सहजता से अधिक शब्द-योजना द्वारा चमत्कार उत्पन्न करते हैं । इसी लिए शमशेरजी ऐसे परिष्कृत नवगीत अपवाद-स्वरूप ही लिख सके हैं -

''सावन की उनहार
आँगन-पार
मधु बरसे, हुन बरसे
बरसे.....स्वाति धार
आँगन पार
सावन की उनहार.. ।''[२४]

वर्तमान शीर्षस्थ आलोचक डॉ. नामवर सिंह की आरम्भिक रचनाएँ छान्दसिक थीं । छोटे-छोटे गीतों की लोक रंजित शब्दावली में लोक-जीवन और प्रकृति की प्रतिच्छवियाँ तथा कवि की अनुभूतियाँ अनुगुंजित हैं । उनकी रचनाओं में पारम्परित 'सवैया' और 'घनाक्षरी' छन्द का गीतात्मक विन्यास नवगीत-रचना के सर्वथा अनुकूल है -

''उनये उनये भादरे
बरखा की जल चादरें
फूल दीप से जले
कि पुरवैया सी याद रे
भादरे
उठे बगूले घास में
चढ़ता रंग बतास में

हरी हो रही धूप
नशे सी चढ़ती झुके अकास में
तिरती हैं परछाइयाँ सीने के भीगे चास में
घास में ।''[२५]

नामवर सिंह के ऐसे गीत 'नीम के फूल (१९५०)' तथा 'पकी आँखें' में संग्रहीत हैं ।

नवगीत के इस प्रारम्भिक पड़ाव में रचनाशील अन्य गीतकार केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', जानकी वल्लभ शास्त्री, रामेश्वर शुक्ल, अंचल, दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी, शिवमंगल सिंह 'सुमन' तथा गोपाल दास 'नीरज' आदि हैं जिनमें से प्रत्येक ने हिन्दी-गीत-धारा को पुष्ट और समृद्ध किया तथा गीत को नये भाव-बोध से सम्पन्न किया । किन्तु तदनन्तर नवगीत का जो विशेष स्वरूप प्रतिष्ठित हुआ, उससे इनके गीतों का तारतम्य नहीं जुड़ता । इनमें से कुछ के गीत वर्णनात्मकता, उद्‌बोधन-वृत्ति, 'सपाट अभिव्यञ्जना' (केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी), कुछ के गीत 'भाषा-अभिजात्य' (जानकी वल्लभ शास्त्री आदि), कुछ 'वैयक्तिक मनोभूमि' (सुमन हिल्लोल, १९३९), कुछ के 'सीमित भाव-बोध' (अँचल) तथा 'दर्शन विशेष' (नीरज) का आग्रह होने के कारण नवगीत के बीज न बन सके । इसमें सन्देह नहीं कि इन्होंने गीत को वांछित भाव-वैविध्य व नयी भंगिमा दी है ।

द्वितीय पड़ाव :

भारतीय काव्य-इतिहास में पाँचवे दशक के उत्तरार्द्ध से आठवें दशक के अन्त तक का समय अत्यधिक तीव्रगामी तथा विविधताओं से परिपूर्ण रहा है । 'तारसप्तक' की तर्ज पर छिड़ी काव्य-चर्चा ने दूसरे तारसप्तक (१९५१) के प्रकाशित होते ही तेज गति पकड़ी । प्रयोगवाद, प्रगतिवाद आदि की व्याख्यायें, प्रतिव्याख्याएँ हुईं और अन्ततोगत्वा 'नयी कविता' अस्तित्व में आकर प्रतिष्ठित हुई । इसी के सचेष्ट 'गीत-धारा' अधिक प्रशस्त होकर प्रस्तुत हुई । इस गीत-धारा से तीन तरह के रचनाकार सम्बद्ध थे । प्रथमतः जो कवि तात्कालिक कविता में कथित प्रयोग की प्रवृत्ति और पश्चिमोन्मुखी प्रेरणा से दूर गीतों को जातीय चेतना से युक्त आधुनिक रूप देने में सचेष्ट थे और गीत को गीत को अभिव्यक्ति का पूर्ण सक्षम माध्यम मानते हैं । ऐसे रचनाकारों में सर्व श्री शंभुनाथ सिंह, बच्चन, केदारनाथ अग्रवाल, मुकुट बिहारी 'सरोज', ठाकुर प्रसाद सिंह, वीरेन्द्र मिश्र व राम दरश मिश्र प्रमुख हैं । दूसरी श्रेणी उन रचनाकारों की है जो घोषित रूप से 'नयी कविता' के लिए प्रतिबद्ध थे और उन्हें गीत का नयी कविता से अस्तित्व अस्वीकार था । अधिक से अधिक वे अपने गीतों को अज्ञेय के स्वर में 'नयी कविता का गीत' कहना पसन्द करते थे । इस वर्ग में डॉ. जगदीश गुप्त, पंडित भवानी प्रसाद मिश्र, नरेश मेहता, भारती, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, गिरिजा कुमार माथुर, केदारनाथ सिंह, मदन वात्स्यायन व कुँवर नारायण आदि हैं । तीसरा वर्ग उन रचनाकारों का है जिनके यहाँ गीत अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनकर तो उभरा किन्तु नये गीत के लिए वे कुछ अधिक सचेष्ट न थे । भाव और विचार-बोध के स्तर पर भी उनमें उतना वैविध्य न था, जितना उन गीतकारों में मिलता है जिनसे नवगीत का तार जुड़ता है ।

नवगीत-विकास के लिए यह अवधि सर्वाधिक महत्वपूर्ण माने जायेंगे क्योंकि इस कालावधि में 'नवगीत' ने अभिधान पाया । अपने स्पष्ट स्वरूप और पहचान के साथ यह अस्तित्व में आया । उपेक्षित किये जाने के कारण अपने स्वरूप की रेखाएँ इसे स्वयमेव निर्धारित करनी पड़ी । काव्य-धारा में स्पष्ट तौर पर महसूस किया जाने लगा कि प्रयोगवादी कविता-धारा के समकक्ष काव्य-व्यक्तित्व के विशिष्ट लक्षणों तथा पृथक चिन्तन, पद्धति व सांस्कृतिक चेतना से पूरित गीत-गंगा प्रवाहमान है ।

डॉ. शम्भुनाथ सिंह छठे दशक में 'दिवालोक (१९५३)' तथा 'माध्यम मैं (१९५५)' में संकलित नवगीतों के द्वारा न केवल स्वयं को अभिव्यक्त करते रहे, बल्कि गीत को अपने तई सर्वाधिक समीप और जातीय चेतना के अनुकूल माध्यम मानकर निरन्तर नये प्रयोग करते रहे । 'दिवालोक' के नवगीतों में कवि 'रूप रश्मि' और 'छायालोक' की किशोर कल्पना से उबरकर यथार्थ जीवन की अनुभूतियों से सुपरिचित होता दिखाई पड़ता है । उनके इस दौर के नवगीतों में उतरा मानवीय सौन्दर्य प्रकृति की पृष्ठभूमि में होने के कारण अधिक उदार और व्यापक है । वे ऐसे रचनाकारों की पँक्ति में हैं जो गीत की बदलती हुई, उसमें हो रहे प्रयोगों और उसके दायित्व-बोध से अच्छी तरह परिचित हैं । श्री शम्भुनाथ सिंह उन रचनाकारों में हैं जो नवगीत को नयी कविता के समानान्तर काव्य-धारा के रूप में देख-परख रहे थे । इन दिनों गोष्ठियों, रेडियो-वार्ताओं, आदि में वाचिक तौर पर वे 'नवगीत' संज्ञा का प्रयोग करने लगे थे ।

हरिवंश राय 'बच्चन' की 'प्रणय पत्रिका (१९५५)' और 'धार के इधर-उधर (१९५७)' के बाद 'आरती और अंगारे (१९५८)', त्रिभंगिमा (१९६१)' और 'चार खेमे चौंसठ खूँटे (१९६२)' गीत-केन्द्रित संग्रह प्रकाशित हुए, जिनमें नवगीत की दृष्टि से 'त्रिभंगिमा' तथा 'चार खेमे चौसठ खूँटे' ही महत्वपूर्ण हैं; इनमें लोक-लयों पर आधारित गीत तो हैं ही, अभिनव छन्दों का सृजन भी है । 'त्रिभंगिमा' के छन्दोबद्ध और लोक-धुनों पर आधारित गीतों में लोक तत्वीय सबलता है । 'चार खेमे चौंसठ खूँटे', 'चल बंजारे', 'यह देह', 'बहुत दिनों पर' जैसे गीतों का छन्द-विन्यास 'नवगीत' के लिए महत्वपूर्ण है । जहाँ तक 'वस्तु-तत्व' का प्रश्न है - 'घन बरसे भीग धरा गमके (वर्षा मंगल) जैसी नवगीतात्मक भाव-भूमियाँ कम हैं ।

'नयी कविता' और उसकी छन्द मुक्ति के प्रबल पक्षधर डॉ. जगदीश गुप्त ने भी पाँचवे और छठे दशक में स्तरीय गीतात्मक रचनाएँ लिखीं । उनके 'नाव के पाँव (१९५५)' तथा 'हिमबिद्ध' संग्रह गीत-यात्रा की उल्लेखनीय कड़ियाँ हैं । 'नाव के पाँव' के गीत छन्द-वैविध्य के लिए दर्शनीयहैं जिनमें छायावादी रूप-विधान तथा अत्यंत संक्षिप्त नव-विन्यास मिलता है । भाव और भाषा में भी छायावादी कोमलता और पारदर्शिता के संस्कार प्रबल हैं, फिर भी उनमें कथन-ढंग का नयापन है ।

'नयी कविता' के पुरोधा 'अज्ञेय' के 'आँगन के पार द्वार' संग्रह में 'अंतरंग चेहरा', 'पलकों का कंपना', 'एक प्रश्न', 'सांस का पुतला' तथा 'चन्द्रकान्त शिला' आदि रचनाओं में गीत की अनुगूँज सुनायी पड़ती है और यह अनुगूँज केवल यहीं (आँगन के पार द्वार) तक सुनी जा सकती है । छन्दों में 'मौन मुखर' होकर भी उनके यहाँ 'उस एक अनिर्वच' के गान में नहीं, दर्शन में गीत के नवगीत होने की संभावनाएँ प्रयोग तक सीमित होकर निष्फल रह गई हैं ।

दूसरे व तीसरे सप्तकों (१९५१ तथा १९५९) में संकलित रचनाकारों में पं. भवानी प्रसाद मिश्र, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, केदारनाथ सिंह, कुँवर नारायण, विजयदेव नारायण साही, सर्वेश्वर दयाल 'सक्सेना' की चर्चा नवगीत-विकास-यात्रा की दृष्टि से आवश्यक प्रतीत होता है । पंडित भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य-चेतना में लोक-जीवन और लोक-प्रकृति का गहरा पुट है जो नवगीत का प्रमुख उपादान है । उनके 'गीत फ़रोश (१९५६)' के गीतों में प्रकृति के सुन्दरतम चित्र और मानवीय संवेदना की गहन व ईमानदार अभिव्यक्ति है । गीतों में प्रसंगानुकूल 'बुन्देली' शब्द-विन्यास के कारण उनके कथन में अनौपचारिकता का नयापन है । 'अंधेरी कविताएँ' तथा 'चकित है दुःख (१९६८)' में संग्रहीत उनके गीतों में भी नवगीत की प्रेरक मनोभूमि है । 'नरेश मेहता' के गीतों में अलंकृत भाषा और वैदिक भाव-भूमि नवगीत के लिए व्यवधान-कारक हैं अन्यथा उनके ऐसे गीतों की संख्या कम नहीं है जिनमें अमूर्त बिम्ब-विधान का विरल प्रयोग है । दूसरा 'तारसप्तक (१९५१)' तथा 'वनपाँखी सुनो' में उनके ऐसे गीत देखे जा सकते हैं ।

दैनिक जीवन के कार्य-व्यापारों व घटनाओं से प्रभावित रघुवीर सहाय के अत्यन्त साधारण भाषा में लिखे गीत पर्याप्त आकर्षक प्रतीत होते हैं । उनके द्वारा प्रयुक्त छन्द की नवीनता और भाषा की सहजता तथा सरल प्रतीकों ने सामान्य पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है । उनके ऐसे गीत 'सीढ़ियों पर धूप' में भी मौजूद हैं । आज भी रघुवीर सहाय 'नयी कविता' के विधान से हटकर जब यदा-कदा नवगीत में मुखर होते हैं तो उनकी अभिव्यक्ति देखते बनती है ।[२६] धर्मवीर भारती में, मणि-सी उज्ज्वल, जल-सी निर्मल, नवल, स्नात, हिम धवल' भाषा, और लोक-जीवन प्रतीकों के माध्यम से नवगीत में आधुनिक भाव-बोध को व्यक्त करने की क्षमता है । उनके 'ठण्डा लोहा (१९५२)' तथा 'सात गीत वर्ष (१९५९)' के गीत युग-संक्रान्त के मर्मस्पर्शी गान हैं । 'तारसप्तक (१९५१)' मे संकलित उनके गीतों में प्रेम परक किशोर भावुकता व छायावादी भाव-प्रवणता वर्तमान हैं किन्तु इन गीतों में रोमान्स की परिपक्व अभिव्यक्ति भी हुई है । "पारम्परिक ढर्रे पर सममात्रिक, अमात्रिक, समतुकान्त और मुक्त छन्द के से छन्दों की बहुरूपता उनके शिल्प में है । गीतों में उर्दू शब्दों का सन्दर्भगत सटीक चयन भारती जी का अतिरिक्त कौशल है । 'ठण्डा लोहा' के प्रथम संकलित १८ गीत व 'थके हुए कलाकार' तथा 'फूलों की मौत' नवगीत परक रचनाएँ हैं । नवगीत का संक्षेप-वैशिष्ट्य इनमें अवश्य बाधित हुआ है, किन्तु 'जागरण', 'बुआई का गीत', 'पावस गीत', 'प्रतिध्वनि, और 'सात गीत वर्ष' की 'संक्रान्ति', 'गेरिक वाणी', 'कस्बे की शाम', 'आँगन', 'अवशिष्ट', 'उपलब्धि', 'ढीठ चाँदनी', 'अन्तहीन यात्री' और 'एक छवि' आदि नवगीत के विकास-क्रम की विशिष्ट उपलब्धियाँ हैं जो इस विधा को उसके गंतव्य का संकेत देती हैं ।"[२७]

'नयी कविता' के कवियों में डॉ. केदार नाथ सिंह भोजपुरी शब्दों का सहज विन्यास कर लोक धुनों की पृष्ठ भूमि में क्षेत्रीय बोध व ग्राम्य-चेतना को नवगीतों में अभिव्यक्ति देने वाले कवि हैं जिनकी रचनाओं की प्रमुख विशेषता संगीतात्मकता और बिम्ब विधान की प्रवृत्ति है । यह विशेषताएँ नवगीत में भी लक्षित होती हैं । 'तारसप्तक (१९५९)' में संकलित 'दुपहरिया', 'फागुन का गीत', 'पात नये आ गये', 'धानों का गीत' और 'रात' नवगीत के स्पष्ट उदाहरण हैं । केदारनाथ सिंह के काव्य संग्रह 'अभी बिल्कुल अभी' के गीत भी नवगीत के अच्छे प्रमाण हैं ।

श्री कुँवर नारायण ने भी छोटे चरणों वाले छन्दों में सरस बोलचाल की भाषा वाले आधुनिक भावबोध से युक्त नवगीतों की रचना की है । उनकी रचना-प्रकृति मूलतः छन्दाश्रित है । रचनाओं की संक्षिप्त रूपाकृति भी सहज ध्यान आकृष्ट करती है । लय के प्रबल पक्षधर कुँवर नारायण के नवगीतों में ब्यावहारिक जीवन, अध्यात्म व देह की अनुभव स्थितियाँ वर्णित हैं । तीसरा 'सप्तक (१९५९)' में 'गुड़िया और भुतहा घर' तथा 'शहजादे की कहानी' में लोक-सन्दर्भ के माध्यम से आज का जीवन-संघर्ष अभिव्यक्त हुआ है । लोक-परिवेश और आँचलिक प्रकृति-दृश्यों से वंचित तथा पौराणिक प्रतीकों के प्रयोग के बावजूद उनमें सहज सम्प्रेषण है । उनके संग्रहों 'चक्रव्यूह' तथा 'परिवेश-हम तुम' में भी नवगीत के कई दृश्य देखे जा सकते हैं ।

'तारसप्तक (१९५९)' के अन्य कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने सर्वाधिक गीत रचनाएँ की हैं। इनके गीतों में समतुकान्त मुक्त छन्द वाले गीतों के अतिरिक्त सममात्रिक, परम्परित और लोकगीतों पर आधृत नवगीतों की संख्या भी पर्याप्त है । समसामयिक जीवन की विसंगति, बेबसी और अव्यक्त सामाजिक पीड़ा की सूक्ष्म अभिव्यक्ति उनकी इन रचनाओं में हुई है । उनके ऐसे गीत विशेषतः 'काठ की घंटियाँ' संग्रह में द्रष्टव्य हैं । विजयदेव नारायण साही के गीतों में भी भावबोध और भाषा के स्तरों पर नयापन है । हालाँकि वैचारिक स्तर पर उनका समाजवादी चिन्तन गहन न हो सका । परिणामतः उनमें कथन की सपाट अभिव्यक्ति हुई है । 'तारसप्तक (१९५९)' में उनके 'मानव राग', 'संग-संग के गान', 'माघ-दश बजे' आदि गीत इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं ।

छठे दशक में 'सिसकती शाम से गमगीन' लोगों के लिए गीत के नये वातायन खोलने के लिए सचेष्ट वीरेन्द्र मिश्र 'नवगीत' की 'खिलती किरन' लेकर आये । उनके गीत संग्रहों - 'गीतम (१९५३)' तथा 'लेखनीबेला' में अनेक अच्छे नवगीत उपस्थित हैं । संक्षिप्तता, छन्द-वैविध्य तथा नये प्रतीक उनके नवगीतों की प्रमुख विशिष्टता है । श्री मिश्र के गीतों की विशेषता उनकी सरल भाषा भी है । जिनमें उर्दू शैली के प्रचलित शब्दों का बेधड़क प्रयोग है । लोक-सन्दर्भों से परे वैयक्तिक सुख-दुःख और कभी-कभी सामाजिकता का स्पर्श लिए आत्मीय सम्प्रेषण भी इनके नवगीतों में विद्यमान है । श्री वीरेन्द्र मिश्र नये गीतों की रचना व प्रतिष्ठा के लिए प्रारम्भ से ही सजग रहे हैं । हाँ, यह अवश्य है कि नवगीत के व्यापक स्वरूप को लेकर जितनी स्पष्ट चिन्तन तथा रचाव की व्यापक लोकभूमि शम्भुनाथ सिंह के यहाँ है, वह चेतना-विस्तार वीरेन्द्र मिश्र में नहीं है ।

नवगीत-विकास क्रम में 'वंशी और मादल (१९५९)' गीत-संग्रह का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण घटना माना जाता रहा है । रचनाकार ठाकुर प्रसाद सिंह के अनुसार, "१९५१ में पहली बार ये गीत प्रकाश में आए, तब इसमें श्री अज्ञेय को हिन्दी कविता के नये वातायन खुलते दीख पड़े थे ।"[२८] पूर्वांचल स्थित 'संथाल' क्षेत्र के आदिवासियों की लोक-चेतना को लोक-लय आश्रित छान्दसिक अभिव्यक्ति मिली। इन गीतों में यद्यपि आंचलिक प्रकृति तो मूलतः विद्यमान है ही, मनुष्य के आदिम मन के उन्मुक्त गान की उष्मा भी उनमें सन्निहित है । इस उष्मा ने 'गीत-कविता' को एक नयी दिशा और चुनौती दी। 'वंशी और मादल' के उपरान्त मुजफ्फरपुर (बिहार) से प्रकाशित 'गीतांगिनी (१९५८)' नवगीत के क्षेत्र में एक असाधारण उपलब्धि है । संपादक श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने इसमें 'नये ढंग के गीत' के लिए लिखित परम्परा में 'नवगीत' अभिधान का सर्वप्रथम प्रयोग किया, और 'नवगीत' संज्ञा सर्वमान्य होकर

प्रचलन में आ गयी । श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने नामकरण की उद्घोषणा के साथ-ही-साथ नवगीत के पाँच तत्वों 'जीवन-दर्शन', 'आत्मनिष्ठा', 'व्यक्तित्व-बोध', 'प्रीति-तत्व' और 'परिसंचय' को भी प्रस्तुत किया । और ७४ कवियों की गीत-रचनाओं के साथ 'गीतांगिनी' संग्रह प्रकाश में आया । इस प्रकार उन्होंने 'नवगीत' की घोषणा कर उसे विकासात्मक दिशा देने तथा चर्चा-विषय बनाने में भरपूर सहयोग दिया है ।

नवगीत रचना के समानान्तर ही उसके व्यक्तित्व को लेकर शीर्षस्थ रचनाकारों की चिन्तन-धाराएं गोष्ठियों, परिसंवादों, आलेखों तथा वक्तव्यों आदि के माध्यम से प्रकट होने लगी थीं । इस दिशा में १९५१ ई. में काशी में सम्पन्न साहित्य संघ अधिवेशन के सुअवसर पर आयोजित 'नौका-गोष्ठी' उल्लेखनीय है, जिसमें गीत-पाठ के अतिरिक्त परिचर्चा भी हुई । इस परिचर्चा में डॉ. धर्मवीर भारती, डॉ. जगदीश गुप्त, नरेश मेहता, डॉ. रामदरश मिश्र तथा डॉ. शम्भुनाथ सिंह ने भाग लिया था । गीत-कविता के सशक्त हिमायती श्री वीरेन्द्र मिश्र साहित्य अकादमी के प्रकाशन 'समकालीन भारतीय साहित्य' में प्रस्तुत हिन्दी साहित्य के रेखांकन में 'गीत' की उपेक्षा से सजग थे और इस विषय पर १४ जुलाई १९५५ के 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में अपना वक्तव्य देकर विरोध जता चुके थे । यह वह समय था जब गीत को सुनियोजित अवमानना का शिकार बनाया जा रहा था । श्री वीरेन्द्र मिश्र ने दिसम्बर १९५६ ई. में प्रयाग के साहित्यकार सम्मेलन में 'नयी कविता-नया गीत' : मूल्यांकन की सीमाएँ' शीर्ष लेख में 'फार्म' और 'कंटेन्ट' दोनों से समृद्ध 'हिन्दी में एक नये गीत के जन्म' की सूचना दी और यह सूचना अनायास नहीं थी । इसी समय 'बच्चन' जैसे शीर्ष गीतकार अपने पाठकों को आगाह कर रहे थे - ''इस उस कोने से आपको लोगों के ऐसे भी स्वर सुनाई देंगे कि अब गीतों का युग बीत गया है। आप अचरज मत कीजिएगा यदि ये लोग कल कहते सुने जायँ कि अब हँसने - रोने का, प्रेम करने का, संघर्षरत होने का युग बीत गया है ।''[२९] गीत के प्रति वीरेन्द्र मिश्र की निष्ठापूर्ण चिन्तन-धारा लगातार व्यक्त होती रही । अजमेर से प्रकाशित होने वाली 'लहर' पत्रिका में १९५६ से १९६४ तक नये गीत के स्वरूप को वे प्रस्तुत करते रहे । इन्हीं दिनों वाराणसी से प्रकाशित मासिक 'वासन्ती (अप्रैल १९६०)' में डॉ. शिव प्रसाद सिंह का लेख 'गीत कविता के प्रति ऐसी वक्र भृकुटि क्यों ?' शीर्षक से सामने आया । 'पाँच जोड़ बाँसुरी' के सहयोगी व गीतकार महेन्द्र शंकर के सम्पादकत्व में प्रकाशित 'वासन्ती (१९६२)' ने 'नये गीत : नये स्वर' लेखमाला आयोजित की जिसमें गिरिजा कुमार माथुर, त्रिलोचन मिश्र तथा रवीन्द्र भ्रमर ने गीत की परम्परा, बदलते स्वरूप, प्रकृति और अनिवार्यता तथा नये प्रयोग पर विस्तृत विवेचन किया । 'नयी कविता' और 'नवगीत' पर समान गति रखने वाले डॉ. रामदरश मिश्र ने स्वीकार किया कि, 'नयी कविता लिखते हुए भी मुझे कुछ ऐसा अनुभव होता है कि कुछ ऐसा छूट गया है जो 'गीत' के माध्यम से व्यक्त होने को आकुल है ।'[३०] तद्नन्तर श्री ओम प्रभाकर तथा भागीरथ भार्गव द्वारा सम्पादित 'कविता-१९६४' नवगीत का पहला बड़ा समवेत संकलन प्रकाश में आया । इसमें 'गीतांगिनी' की भाँति गीत-नवगीत का मिश्रण नहीं था । 'कविता-१९६४' की विशेषता यह है कि, ''इसका रचना-पक्ष जितना समृद्ध और रचनाओं का चयन जितना तार्किक है, उतना ही नवगीत पर विचार-विश्लेषण पक्ष परिपक्व है ।''[३१] इसके माध्यम से डॉ. शम्भुनाथ सिंह, डॉ. रवीन्द्र भ्रमर, डॉ. रामदरश मिश्र तथा डॉ. रमेश कुन्तल 'मेघ' ने नवगीत की विचार भूमि पर समग्रता से

विचार किया । यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि डॉ. मेघ के अतिरिक्त शेष तीन विवेचक नवगीत के रचना-यात्री हैं, स्वभावतः वे नवगीत को अपेक्षाकृत अधिक गहराई से उसके सर्वांग में प्रस्तुत कर सके हैं ।

सन् १९६३ ई. में परिनिष्ठित शैली में गेयता तथा नये बिम्बों में आधुनिक जीवन का कटु यथार्थ लेकर 'रवीन्द्र भ्रमर के गीत' सामने आये । 'धर्मयुग' के २ जनवरी १९६३ वाले अंक में डॉ. भ्रमर ने 'नवगीत' को समकालीन हिन्दी कविता का अनिवार्य सन्दर्भ बतलाया था । हरीश भादानी के सम्पादन में बीकानेर से प्रकाशित 'वातायन' (१९६५) गीत-विशेषांक था, जिसमें डॉ. रवीन्द्र भ्रमर के अतिरिक्त डॉ. रमेश कुन्तल 'मेघ' तथा डॉ. महावीर दाधीच प्रभृति ने गीत का पक्ष प्रस्तुत किया था। इसके पश्चात 'वातायन' के गीत-केन्द्रित दो अंक और प्रकाशित हुए थे । सातवें दशक के मध्यान्ह में लघु पत्रिकाओं तथा कथित व्यावसायिक या बड़ी पत्रिकाओं में 'नवगीत' चर्चा का केन्द्र बिन्दु रहा। इसी सन्दर्भ में इलाहाबाद से प्रकाशित 'माध्यम' (नवम्बर-१९६४) तथा 'ज्ञानोदय (अक्टूबर-१९६५)' में 'गीत के पक्ष में' वीरेन्द्र मिश्र के सुचिन्त्य लेख प्रकाशित हुए । इन लेखों ने महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाईं। 'माध्यम' (मई-१९६६) में सकलदीप सिंह 'नवगीत' को 'भावुकता का अन्तिम दौर' कहते हुए प्रस्तुत हुए । जुलाई-१९६६ के 'माध्यम' में ही श्री गोपीकृष्ण शुक्ल ने नवगीत के आधारों की विवेचना की। इनके अतिरिक्त लखनऊ से निकलने वाली पत्रिका 'उत्कर्ष' (मासिक) में 'मेरा अपना आकाश' स्तम्भ के अन्तर्गत देवेन्द्र कुमार (फरवरी-१९६४), ओम प्रभाकर (मार्च-१९६४), नरेश सक्सेना (मार्च-१९६५), नईम (दिसम्बर-१९६५), शलभ श्रीराम सिंह (अप्रैल-१९६६) आदि रचनाकारों के नवगीत परक मन्तव्य प्रकाशित हुए । इस प्रकार नवगीतकारों के वक्तव्यों, लेखों तथा रचनाओं के प्रकाशन की श्रृंखला अन्य पत्रिकाओं के साथ-ही-साथ 'धर्मयुग' में भी जारी रही और बालस्वरूप 'राही' (१७ मई-१९६५) नीरज (५ दिसम्बर-१९६५), वीरेन्द्र मिश्र (१९ दिसम्बर-१९६५) की नवगीत-सम्बन्धित मान्यताएँ प्रकाशित हुईं।

हम देखते हैं कि वास्तव में छठे दशक में हिन्दी-लेखन में आंचलिकता की जो विशेष प्रवृत्ति उभर कर सामने आयी, वह 'कथा-साहित्य' के अतिरिक्त 'नवगीत' में विशेष रूप से परिव्याप्त हुई है। किन्तु इसका आशय यह कदापि नहीं कि, नवगीत की वस्तु-सत्ता आंचलिक-दामन में ही सिमट कर रह गई वरन इस अवधि में 'नवगीत' पार्श्व से निकलकर सामने आ चुका था और चर्चा के केन्द्र में स्थान पा चुका था । इस दिशा में दिल्ली में 'प्रभा' द्वारा आयोजित बैठक (२ जनवरी १९६६ ई.) उल्लेखनीय है जिसमें उदयभान मिश्र ने अपना लेख पढ़कर सुनाया और डॉ. रामदरश मिश्र, मुद्रा राक्षस तथा शमशेर बहादुर आदि ने वैचारिक हस्तक्षेप किया । इसी वर्ष 'हिन्दी साहित्य संघ, पटना' ने एक संगोष्ठी की जिसमें नवगीत के उद्भव, सिद्धान्त, रचनाकारों तथा नवगीत के स्वीकार, अस्वीकार पर रामनरेश पाठक, डॉ. कुमार विमल, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, रामचन्द्र भूषण, शंकर दयाल सिंह तथा गोपी वल्लभ और अन्य लोगों ने विचार व्यक्त किये । १९६६ ई. में ही कलकत्ता में सम्पन्न दो विचार-गोष्ठियों में ठाकुर प्रसाद सिंह, डॉ. बच्चन, भँवरमल कल्याणमल लोढ़ा, विष्णुकान्त शास्त्री, ओम प्रभाकर और चन्द्रदेव सिंह ने भाग लिया । १९६६ में ही 'अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, हिन्दी परिषद् ने अपने २२वें अधिवेशन में 'नवगीत' विधा पर एक गोष्ठी की । इन विचार-गोष्ठियों के अतिरिक्त बालस्वरूप 'राही' के 'नया गीत' (धर्म युग : २० मार्च १९६६), गोपाल दास 'नीरज' के 'प्रश्नचिन्हों की भीड़

में घिरा गीत' (साप्ताहिक हिन्दुस्तान : ३० अक्टूबर १९६६), सचीन्द्र भटनागर के लेख 'आधुनिक गीत का छन्द विधान' (साप्ताहिक हिन्दूस्तान : २७ नवम्बर १९६६), प्रो. विष्णु कान्त शास्त्री के 'गीत और नवगीत' (धर्म युग : २५ फरवरी व ३ मार्च (१९६६) लेखों के माध्यम से 'नवगीत' अत्यधिक चर्चित रहा ।

अप्रैल १९६७ में दिल्ली की संस्था 'साहित्यिकी' द्वारा आयोजित पाँच काव्य-संस्थाओं के क्रम में चौथे दिन 'गीत-गोष्ठी' में रवीन्द्र भ्रमर व बालस्वरूप राही ने नवगीत पर आलेख प्रस्तुत किये । नवगीत केन्द्रित विचार-गोष्ठियों की श्रृंखला में १९६८ ई. में काशी विद्यापीठ में सम्पन्न आयोजन महत्वपूर्ण है । डॉ. शम्भुनाथ सिंह-स्वर्ण जयन्ती समारोह के सुअवसर पर हुई गोष्ठी में ठाकुर प्रसाद सिंह, ओम प्रभाकर, उमाशंकर तिवारी, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, रामनरेश पाठक तथा परमानन्द श्रीवास्तव ने भाग लिया। मुम्बई में भी डॉ. भारती की अध्यक्षता में दो गोष्ठियाँ क्रमशः १९६८ व १९७० ई. में आयोजित हुईं जिनमें डॉ. शम्भुनाथ सिंह, वीरेन्द्र मिश्र, गिरिजा कुमार माथुर, ठाकुर प्रसाद सिंह, रवीन्द्र भ्रमर, महेन्द्र शंकर जैसे नवगीत-कवियों तथा राम मनोहर त्रिपाठी प्रभृति काव्य मर्मज्ञों ने भाग लिया ।

दिसम्बर १९७६ में वीरेन्द्र मिश्र के सम्पादन में प्रकाशित 'सांध्यमित्रा' के प्रवेशांक में नवगीत के विविध पक्षों को लेकर राजेन्द्र प्रसाद सिंह, ओम प्रभाकर तथा डॉ. कौशल मिश्र के लेख और दूसरे अंक में 'नवगीत' के विकास-यात्रा को रेखांकित करते डॉ. वंशीधर शर्मा तथा प्रेमशंकर व नयी कविता के परिप्रेक्ष्य में नवगीत को आँकते वीरेन्द्र मिश्र के विवेचनापूर्ण लेख सहित ओम प्रभाकर, उमाकान्त मालवीय, अनूप अशेष, स्याम सुन्दर दुबे, शलभ श्री राम सिंह, माहेश्वर तिवारी, नारायण लाल परमार व देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' आदि विशिष्ट २१ नवगीतकारों की रचनाएँ संग्रहीत हैं ।

इस दशक के मध्यान्ह तक ऐसे अनेकों नवगीत प्रकाश में आने लगे जिनमें नगरीय, महानगरीय जीवन की समस्याओं, आपाधापी और तेजी से हो रहे औद्योगीकरण की तस्वीर दिखाई देती है ।

'कविता-१९६४' तक आते-आते 'नवगीत' लगभग सर्व स्वीकृति पा चुका था । रचना और आलोचना दोनों ही क्षेत्रों में वह पर्याप्त चर्चा का विषय बन चुका था । अब नवगीत समकालीन काव्य-धारा 'नयी कविता' के समानान्तर समादृत और अभिव्यक्ति का सहज भारतीय स्वर कहा जाने लगा। यह वह समय था जब 'नयी कविता' अनेक सवालों से घिर गई थी । नयी कविता का आन्दोन बिखराव के बावजूद अपने चरम पर था, और अनेक रूपनाम धारी 'नयी कविता' विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रसार पा रही थी और इन कविताओं का विन्यास गद्यात्मक हो गया था । छन्दात्मक रचना-विधान की उपेक्षा के इस काव्य-प्रवाह में भी नवगीत वस्तु और शिल्प की ताजगी के साथ प्रकट होता रहा ।

दिल्ली से प्रकाशित 'गीत-१' (१९६६) तथा 'गीत-२ (१९६७) समवेत संकलन वे कड़ियाँ हैं जो नवगीत की पहचान बनाने और उसे प्रकर्ष की ओर ले जाने में महत्वपूर्ण आधार हैं । सम्पादकों - श्री दिनेश सक्सेना 'दिनेशायन' तथा भूपेन्द्र कुमार स्नेही ने संकलनों में विशिष्ट गीतकारों की रचनाओं सहित उनके वक्तव्य, परिचर्चाएँ और सम्पादकीय टिप्पणियाँ प्रकाशित कीं । डॉ. नामवर सिंह के अतिरिक्त समीक्षकों व शीर्ष गीतकारों - बच्चन, डॉ. रामदरश मिश्र, डॉ. रवीन्द्र भ्रमर, शलभ श्री राम सिंह व बाल स्वरूप राही के लेख इन संकलनों के वैशिष्ट्य हैं । जिन अनेक लघु पत्रिकाओं में नवगीत को

यथेष्ट सम्मान मिला उनमें - 'ज्योत्स्ना' (पटना), 'ज्ञानोदय' (कलकत्ता), 'वासन्ती' (वाराणसी), 'कल्पना' (हैदराबाद), 'अंकन', 'वातायन' (बीकानेर), 'आजकल' (दिल्ली), 'मूल्यांकन' (लखनऊ), 'सम्बोधन' (सॉकरोली), 'नई धारा' (पटना), 'शताब्दी' (जबलपुर), 'अन्तराल', 'अनन्या' (अलीगढ़), 'ऋचा' (सतना), 'परिवेश' (गाजियाबाद), 'राष्ट्रवाणी' (पुणे), 'सान्ध्यमित्रा' (बम्बई) और 'विमर्श' (वडोदरा) आदि प्रमुख हैं । इन लघु पत्रिकाओं के अतिरिक्त समाचार पत्रों के साहित्यिक पन्नों तथा काव्य-मंचों के माध्यम से जो गीत-कवि अपनी नयी वस्तु-चेतना के साथ प्रस्तुत हुए उनमें सर्व श्री भवानी प्रसाद तिवारी, शान्ति सुमन, मुकुट बिहारी 'सरोज', भारत भूषण, परमानंद श्रीवास्तव, शलभ श्रीराम सिंह, नईम, उमाकान्त मालवीय, ओम प्रभाकर, रामचन्द्र चन्द्रभूषण डॉ. राम दरश मिश्र, उमाशंकर तिवारी, देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' भगवान स्वरूप, सोम ठाकुर तथा शिवबहादुर सिंह 'भदौरिया' के नाम उल्लेखनीय हैं । इस दौरान इनके अतिरिक्त डॉ. शम्भुनाथ सिंह, वीरेन्द्र मिश्र और ठाकुर प्रसाद सिंह के यहाँ नवगीत रचना का सातत्य बना रहा।

गीत-यात्रा के रेखांकन में गोपाल दास नीरज, आरसी प्रसाद सिंह, रमानाथ अवस्थी, राम अवतार त्यागी, श्यामनन्दन 'किशोर', राजनारायण 'विसारिया' देवराज 'दिनेश', मधुर शास्त्री, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', श्रीपाल सिंह 'क्षेम', बलबीर सिंह 'रंग' व जानकी वल्लभ शास्त्री का अवदान कम नहीं है । किन्तु इनमें से कुछ कवि-सम्मेलनीय व्यामोह, कुछ भाव व भाषा अभिजात के कारण व्यापक भाव-बोध और गहन सामाजिक सम्प्रक्ति से वंचित रह गये तथा नवगीत के सच्चे पथिक न बन सके । यद्यपि इनकी अनेक रचनाओं में नवगीत का कोई-न-कोई पहलू झलक मार जाता है, किन्तु झलक मात्र ही नवगीत का समूचा व्यक्तित्व नहीं ।

'पाँच जोड़ बाँसुरी' जहाँ एक ओर चालीस काव्यकारों - निराला से लेकर नरेश सक्सेना तक के गीत-चेतना के माध्यम से कविता की गीत-धारा को समेकित रूप में प्रस्तुत करता है, वहीं गीत व्यक्तित्व में समय-समय पर आए बदलाव का रेखांकन भी है । साथ ही युग-बोध को लेकर समकालीन 'नयी कविता' के परिप्रेक्ष्य में गीत-कविता का परीक्षण भी है । इसमें गीत-यात्रा के पाँच मोड़ क्रमशः निराला, बच्चन, ठाकुर प्रसाद सिंह, केदारनाथ व ओमप्रभाकर के नेतृत्व में दर्शाये गये हैं । इस संकलन की एक अतिरिक्त विशिष्टता यह है कि, इसमें गीत-विधा को विवेचित करने वाले पाँच उत्कृष्ट निबन्ध संग्रहीत हैं जिनके लेखक काव्य-मनीषी-भगवत शरण उपाध्याय व विद्यानिवास मिश्र तथा गीतकार, आलोचक-डॉ. हरिवंश राय 'बच्चन', ठाकुर प्रसाद सिंह और केदारनाथ सिंह हैं । अनेक विशेषताएँ होते हुए भी इस संकलन की कुछ सीमाएँ और अन्तर्विरोध हैं, जो भूमिका से ही उजागर हो जाते हैं । यथा इन गीतों को 'किसी एक नाम, संज्ञा से अभिहित असंभव माना गया, दूसरा - जहाँ 'बच्चन' को मात्र वैयक्तिक हर्ष-विषाद् को प्रकट करने वाला गीतकार कहा गया, वहीं कथ्य के स्तर पर बच्चन से प्रेरणा न लेने के लिए समसामयिक गीतकारों पर लगभग अफसोस जाहिर किया गया है । लोकधुनों पर आधारित गीतों को 'लोक-चेतना' का पर्याय माना गया, इसीलिए ठाकुर प्रसाद सिंह के 'वंशी और मादल' तथा बच्चन के लोक धुनों पर आधारित गीतों में लोक-चेतना की एक-सी चरम परिणति दिखाई पड़ी । इसके अन्तर्विरोध और भी हो सकते हैं, फिर भी नवगीत की विकास-यात्रा को समझने में इस संकलन का बहुत महत्व है ।

हिन्दी साहित्य के अनुशीलन से हम पाते हैं कि आठवें दशक के साहित्य का केन्द्र-बिन्दु ग्राम्यांचल और उसका परिवेश था । यह वैशिष्ट्य कथा-साहित्य के अतिरिक्त गीत-विधा में ही दृष्टिगत होती है। स्मरणीय है कि साहित्य में यह 'लोक-सम्प्रक्ति' छठे दशक में आंचलिक प्रवृत्ति के रूप में प्रविष्ट हो चुकी थी । 'नयी कविता' अब भी जीवन की टूटन, घुटन, संत्रास और अजनवीपन के बौद्धिक भार से दबी जा रही थी, जबकि 'नवगीत' लोक सम्प्रक्ति के साथ नगर-बोध और औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप बदलते सामाजिक, पारिवारिक जीवन को स्पर्श करता था । उसमें पाश्चात्य जीवन-पद्धति और सामाजिक मान्यताओं के प्रति खुला आक्रोश व्यक्त हुआ है । 'रवीन्द्र भ्रमर के गीत (१९६९)', उमाशंकर तिवारी के गीत-संग्रह 'जलते शहर में (१९६८)', रमेश रंजक के 'गीत विहग उतरा (१९६९)', 'किरण के पाँव (१९७०)', 'हरापन नहीं टूटेगा (१९७४)', शान्ति सुमन कृत 'ओ प्रतीक्षित (१९७०)', 'टूटती परछाई (१९७८)', बाल स्वरूप 'राही' के 'जो नितान्त मेरी है (१९७१)', मत्स्येन्द्र शुक्ल कृत 'एक युग के बाद (१९७२)', ओम प्रभाकर के 'पुष्पचरित (१९७३)', उमाकान्त मालवीय के 'सुबह रक्त पलाश की (१९७६)', शम्भुनाथ सिंह कृत 'जहाँ दर्द नीला है (१९७७)', कुँवर बेचैन कृत 'भीतर साँकल, बाहर साँकल (१९७८)', अनूप अशेष कृत 'लौट आएँगे सगुन पंछी (१९८०)', नईम कृत 'पथराई आँखें (१९८०)' व वीरेन्द्र मिश्र कृत झुलसा है छायानट धूप में (१९८०)' आदि गीत-रचनाओं में उपर्युक्त प्रवृत्तियाँ स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं ।

वैसे तो सातवें दशक के उत्तरार्द्ध से ही नवगीत केन्द्रित अलग-अलग रचनाकारों के स्वतंत्र गीत-संग्रह प्रकाश में आने लगे और लगभग आठवें दशक के आरम्भिक चरण में तो विशुद्ध नवगीत-संकलनों की अच्छी-खासी संख्या सामने आई, किन्तु नवगीतों के समवेत संकलन का भी क्रम नहीं टूटा । सन् १९८० ई. में श्री माहेश्वर तिवारी, देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' व डॉ. भगवान शरण भारद्वाज के सम्पादन में 'नवगीत : सर्जन और समीक्षा' नामक ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ । इस ग्रन्थ में ५१ गीतकारों की रचनाओं का संकलन है । इसके सर्जनखण्ड में जहाँ अनूप अशेष, उमाकान्त मालवीय, ओम प्रभाकर, देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' बुद्धिनाथ मिश्र, माहेश्वर तिवारी व रामदरश मिश्र आदि शीर्षस्थ नवगीतकारों की रचनाएँ संकलित हैं, वहीं समीक्षा-खण्ड में वीरेन्द्र मिश्र के साक्षात्कार सहित राजेन्द्र गौतम व राजेन्द्र प्रसाद सिंह के विचारपूर्ण आलेखों का समावेश भी हुआ है ।

नवगीत यात्रा के इस पड़ाव में भी जब वह युग-चेतना की अभिव्यक्ति में सक्षम और सशक्त माध्यम प्रमाणित होकर काव्य-अन्वेषकों की दृष्टि में प्रशंसित हो रहा था, तब नयी कवितावादियोंकी दृष्टि में समुचित स्थान पाने के लिए वह अब भी सचेष्ट और प्रतीक्षारत था । 'अज्ञेय' अभी भी काव्य में गीत को 'गौण' माने जा रहे थे और उसे 'आज के सम्पूर्ण जटिल जीवन की सम्पूर्णता और जटिलता को व्यक्त करने में अक्षम' मान रहे थे ।[३२] कुछ और भी गणमान्य नयी कवितावादी थे जो इसका खुला समर्थन कर रहे थे । किन्तु डॉ. शिव कुमार मिश्र जैसे प्रगतिशील आलोचक नवगीत की क्षमता और स्वरूप को पहचान कर उसके विरोध को अवांछित मानते हुए लिख रहे थे कि, "जिस तरह कतिपय नयी कवितावादी नवगीतों का विरोध कर रहे हैं, उसे देखकर ऐसा लगता है कि उन्हें जरूर नवगीतों से कोई वास्तविक खतरा महसूस हो रहा है । अन्यथा यदि नवगीत युग के स्वर से बिल्कुल विपरीत है, तो विरोध किया जाये या न किया जाये, समय देवता आप उन्हें पृष्ठभूमि में फेंक देंगे।"[३३]

यह कथन 'नवगीत' का कुछ विशेष लोगों द्वारा विरोध और उसी अनुपात में गहरी स्वीकृति मिलने की ओर संकेत देता है । काव्य शीर्षस्थ लोगों द्वारा गीतों की उपेक्षा और विरोध निष्फल न गया, बल्कि अनेक रचनाकार जो अपने प्रारम्भिक चरण में अच्छे गीत लिख रहे थे, ऐसे प्रयासों के चक्कर में पड़कर 'नयी कवितावादी' बन गये । गीत से उनका नाता तो टूटा ही, कालान्तर में वे स्वयं गीत को अक्षम विधा मानने लगे । परमानन्द श्रीवास्तव, कुँवर नारायण तथा श्रीकान्त वर्मा और कैलाश बाजपेयी इस वर्ग की लम्बी सूची के प्रमुख विद्वान हैं । लेकिन ऐसे अनगिनत प्रयत्नों के बावजूद नवगीत-रथ की गति धीमी पड़ने के बदले कुछ अधिक तीव्र हो गई । सर्जन और समीक्षा दोनों ही स्तरों पर नवगीत में तीव्रता आई ।

तृतीय पड़ाव :

लगभग आठवें दशक के अन्त तक 'नवगीत' हिन्दी साहित्य में पूर्णतः प्रतिष्ठित और व्यापक स्वीकृति पा चुका था । तदुपरान्त नवगीत को प्राप्त प्रतिष्ठा और व्यापक सवीकृति तथा यशोपलब्धि आदि आधारों को संयोजित करने तथा वैभवशाली बनाने की प्रक्रिया आरम्भ हुई । नवाँ दशक नवगीत-रचना-विकास को तार्किक और व्यवस्थित ढंग से संग्रन्थित कर जिज्ञासु पाठकों तक पहुँचाने का भी मौन आग्रही था । इस महान कार्य और चुनौतीपूर्ण ऐतिहासिक दायित्व का बखूबी निर्वाह डॉ. शम्भुनाथ सिंह ने किया । उनके ही सम्पादन में 'नवगीत दशक-१' (१९८२), 'नवगीत दशक-२' (१९८३), 'नवगीत दशक-३' (१९८४) तथा 'नवगीत अर्द्धशती' (१९८६ ई.) का प्रकाशन हिन्दी काव्य-इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं । इन संग्रहों का प्रकाशन 'तारसप्तक' की तर्ज पर मानना वास्तव मे भूल होगी, क्योंकि इसी भूल से यह भ्रम उत्पन्न होता है कि, 'नवगीत' भी 'नयी कविता' की भाँति एक काव्यान्दोलन है । डॉ. शम्भुनाथ सिंह ने 'नवगीत दशक-१' की भूमिका में न केवल इस आशंका को समाप्त किया है, बल्कि नवगीत को हिन्दी-काव्य की स्वाभाविक धारा बतलाते हुए यह उल्लेख भी किया है कि 'नवगीत' नयी कवितावादियों से अवमानित और उपेक्षित होकर भी न तो कभी चुका है और न ही काव्य-मूल्यों से अपदस्थ हुआ ।

'नवगीत दशक-१' में स्वतन्त्र भारत के प्रथम दशक में उभरे दस ऐसे चुनिन्दा नवगीतकार संकलित हैं जिनकी मूल काव्यात्मक चेतना नवगीतात्मक है, और वयक्रम के आधार पर सभी कवियों का जन्म १९३५ के पूर्व हुआ है । डॉ. शम्भुनाथ सिंह के अतिरिक्त वे हैं - नईम, सोम ठाकुर, देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', देवेन्द्र कुमार, भगवान स्वरूप, उमाकान्त मालवीय, शिवबहादुर सिंह 'भदौरिया', रामचन्द्र चन्द्र-भूषण व ठाकुर प्रसाद सिंह । इसी क्रम में बड़ौदा से प्रकाशित पत्रिका 'उत्तरा' ने भी एक विशिष्ट योजना के तहत् प्रमुख नवगीतकारों की गीत-यात्रा को कवियोंके आत्म-वक्तव्य के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास आरम्भ किया था । अब तक डॉ. शम्भुनाथ सिंह, श्री वीरेन्द्र मिश्र, स्व. उमाकान्त मालवीय, रामदरश मिश्र तथा राजेन्द्र प्रसाद सिंह की गीत यात्रा का प्रकाशन हो चुका है । नवगीत की पूर्ववर्ती गीत-धारा नयी कविता और नवगीत के पारस्परिक सम्बन्ध तथा गीत की प्रासंगिकता को लेकर हुई चर्चा-परिचर्चा का अद्यतन प्रकर्ष-बिन्दु है - २ और ३ जून १९८४ को लखनऊ में सम्पन्न 'नवगीत समारोह : १९८४' । इससे एक वर्ष पूर्व ९-१० जुलाई १९८३ को भोपाल में 'नवगीत दशक-२' के विमोचन समारोह के अवसर पर आयोजित विचार-गोष्ठी में 'छन्द-प्रसंग' को लेकर जो विचार

आरम्भ हुआ था और इस गोष्ठी में छान्दसिक काव्य की महत्ता को जिस रूप में स्वीकृति मिली थी, उसी के परिणाम स्वरूप वर्ष १९८४ के आरम्भ में डॉ. नामवर सिंह आदि समीक्षकों ने छन्दोबद्ध कविता और उसमें भी गीत के माध्यम से काव्य की निरन्तरता की संभावना व्यक्त की थी । इसके संकेत भोपाल में आयोजित 'कविता कुम्भ' में मिले थे । 'नवगीत दशक-२' में वे दस नवगीतकार संकलित हैं जिनका काव्य-सृजन सातवें दशक में नवगीत को युग अभिव्यक्ति का माध्यम बनकर प्रस्तुत हुआ और उसे वांछित दिशा प्रदान कर सका । ये नवगीतकार 'नवगीत दशक-१' में सम्मिलित रचनाकारों की अगली कड़ी हैं । इनका जन्म १९३५ से १९५० के बीच हुआ और ये स्वतंत्र भारत के दूसरे चरण में (१९६१ से आगे) विशेष रूप से प्रकाश में आये । कुमार शिव, अनूप अशेष, राम सेंगर, ओम प्रभाकर, उमा शंकर तिवारी, माहेश्वर तिवारी, कुमार रवीन्द्र, गुलाब सिंह, श्री कृष्ण तिवारी और अमरनाथ श्रीवास्तव की नवगीत-रचनाओं से युक्त इस संग्रह की भूमिका में गीत की प्रवृत्ति, प्रकृति, प्रकार और विकास का रेखांकन, 'गीत और नयी कविता' तथा 'पारम्परिक गीत और नवगीत' का संक्षिप्त विवेचन तथा नवगीत की पहचान का क्रमवार विश्लेषण है ।

पूर्वोक्त 'नवगीत समारोह : १९८४' में अनेक ऐसे विषयों पर पहली बार गम्भीरता से विचार-विमर्श किया गया, जिन पर इससे पूर्व प्रसंगवश दृष्टिपात किया गया था । यह समारोह श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा 'नवगीत दशक-३' के विमोचन के साथ आरम्भ हुआ । श्रीमती वर्मा, डॉ. शिव मंगल सिंह 'सुमन', डॉ. शम्भुनाथ सिंह, डॉ. जगदीश गुप्त, श्री ठाकुर प्रसाद सिंह, श्री देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', डॉ. माहेश्वर तिवारी, डॉ. ओम प्रभाकर, डॉ. उमाशंकर तिवारी, डॉ. पुष्पपाल सिंह, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद, श्री कुमार रवीन्द्र, डॉ. राजेन्द्र गौतम एवं श्री योगेन्द्र दत्त शर्मा ने पत्र-वाचन और अभिभाषण के माध्यम से इस सामरोह की गोष्ठियों में भाग लेते हुए न केवल नवगीत के स्वरूप को व्याख्यायित किया बल्कि कविता की मूल चेतना को पुनर्परिभाषित करने का युगसापेक्ष कार्य भी किया । साथ ही 'नवगीत' के अस्तित्व, स्वरूप एवं प्रासंगिकता को लेकर अनेक प्रश्न भी उठे । उपर्युक्त समारोह में हुए वैचारिक मंथन के फलस्वरूप तथ्य स्पष्टतः उभरकर सामने आये कि, "छन्द आज भी कविता के लिए एक शक्ति है, गीत शाश्वत है, 'नवगीत' गीत की स्वीकृति का ही उत्तरवर्ती सोपान है नवगीत बोधात्मक दृष्टि से तथा शिल्प की दृष्टि से भी पारम्परिक गीत तथा नयी कविता से भिन्न व्यक्तित्व एवं अस्तित्व रखता है, लेकिन गीत और नयी कविता का सम्मिलित उत्तराधिकार उसे प्राप्त हुआ है, अतएव वह इनसे सर्वथा विच्छिन्न एवं निरपेक्ष विधा नहीं है, नवगीत सीमित संवेदनाओं का काव्य नहीं है, परन्तु वह यह भी दावा नहीं करता कि सभी नवगीतेतर काव्य-रूप एवं विधाएँ हीन अथवा अकाव्यात्मक हैं ।"[३४] उपर्युक्त गोष्ठी में जहाँ एक प्रयत्न 'नवगीत' को यान्त्रिक परिभाषा में बाँधने का रहा, वहीं दूसरी ओर अधिक सफलता पूर्वक यह प्रमाणित किया गया कि 'नवगीत' किसी पूर्व-निर्धारित व्याकरण का पद्य-भाष्य नहीं है । अनेक असहमतियों के बीच इस गोष्ठी में भाग लेने वाले छायावादी, प्रगतिवादी, नयी कवितावादी एवं नवगीतवादी कवियों-समीक्षकों ने सिर्फ नवगीत के अस्तित्व को ही मान्यता नहीं दी, अपितु उसे सामयिक सन्दर्भों में अत्यन्त जीवन्त काव्य-रूप भी प्रमाणित किया और इसके सम्पन्न भविष्य के प्रति आशा व्यक्त की ।

नवगीत रचना-यात्रा में सातवें-आठवें दशक तक पूर्ण प्रतिष्ठित अखिलेश कुमार सिंह, राजेन्द्र गौतम,

डॉ. सुरेश, सुधांशु उपाध्याय, विजय किशोर, योगेन्द्र दत्त शर्मा, जहीर कुरेशी, बुद्धिनाथ मिश्र, दिनेश सिंह तथा विनोद निगम 'नवगीत दशक-३' के रचनाकार हैं। इन गीतकारों का जन्म १९४५ से १९५० के मध्य माना जाता है। इनकी भावान्विति में प्रायः समरसता और एक-सी तल्ख अनुभूति व व्यंग्यात्मक पुट है। इसकी भूमिका में डॉ. शम्भुनाथ सिंह ने छन्द की महत्ता और छन्दाश्रित नवगीत के माध्यम से काव्य के अन्य रूपों में नवगीत-सृजन की दिशाएँ उद्घाटित होने की आशा प्रकट की है।

१९८४ ई. में नवगीतकार श्री देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के सम्पादन में 'यात्रा में साथ-साथ' शीर्षक से समवेत संकलन प्रकाशित हुआ, जिसमें घनश्याम अस्थाना, बाबूराम शुक्ल, श्याम निर्मम, व हरीश निगम नवगीत केन्द्रित किसी संकलन में पहली बार तथा देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', माहेश्वर तिवारी, कुमार रवीन्द्र, योगेन्द्र दत्त शर्मा व राजेन्द्र गौतम पूर्वोक्त दशकों के अतिरिक्त दूसरी बार प्रकाश में आये। चयनित रचनाकार न तो नवगीत-विकास-यात्रा की दृष्टि से संयोजित हैं और न ही यह संकलन नवगीत की श्रेष्ठतम रचनाओं की प्रस्तुति है।[३५]

डॉ. शम्भुनाथ सिंह ने १९८६ ई. में 'नवगीत अर्द्धशती' नामक वृहद् संकलन प्रकाशित किया। इसमें वर्णानुक्रम से निराला से लेकर हृदय चौरसिया तक ८१ रचनाकारों के नवगीतों का संकलन है। निःसंदेह यह ग्रन्थ हिन्दी-नवगीत-विधा की अर्द्धशताब्दी का रचनात्मक लेखा है। हालांकि इसमें कुछ ऐसे रचनाकार भी प्रवेश पा गये हैं, जिनका रचनात्मक कौशल व गीतात्मक निष्ठा संदिग्ध है, उनके सृजन में निरन्तरता का अभाव है। साथ ही इन्होंने बहुत ही कम नवगीत लिखे हैं। इस बात का एहसास डॉ. शम्भुनाथ सिंह को बाद में हुआ जिसकी स्वीकारोक्ति उन्होंने दिल्ली में आयोजित नवगीत अर्द्धशताब्दी समारोह में अपने वक्तव्य में की थी।[३६]

'नवगीत अर्द्धशती' के प्रकाशन के साथ ही नवगीत-केन्द्रित आयोजनों की श्रृंखला सामने आने लगी। मार्च १९८६ के आरम्भ में बम्बई में पंडित नरेन्द्र शर्मा की अध्यक्षता में डॉ. धर्मवीर भारती ने इसे समारोह पूर्वक लोकार्पित किया। इस पर 'आधुनिक भाषाओं में नवगीत : वर्तमान और भविष्य' जैसे अब तक अछूते तथा 'भारतीय काव्य परम्परा और नवगीत' जैसे शोध योग्य विषय पर भागीरथ दीक्षित, डॉ. चन्द्रकान्त वांदिबड़ेकर, डॉ. रामजी तिवारी, डॉ. उमाशंकर तिवारी, डॉ. रविनाथ सिंह, डॉ. प्रभात, डॉ. विनोद गोदरे, डॉ. त्रिभुवन नाथ राय, डॉ. राधे मोहन शर्मा, मराठी के शंकर वैद्य, उड़िया के गोरा महांति, गुजराती के प्रद्युम्न लाल बारोट, कन्नड़ के डॉ. चिदम्बर दीक्षित आदि विभिन्न भाषा-भाषी विद्वानों ने विचार व्यक्त किये। हिन्दी गीतकारों सहित मराठी के शान्ताराम नांदगाँवकर, पंजाबी के अजीत सिंह 'जीत', उड़िया के गोरा महांति और कन्नड़ के बी. ए. सनदि ने अपने-अपने गीत सुनाये।

अप्रैल १९८६ में मऊनाथ भंजन, मई में धनबाद, अगस्त में इलाहाबाद, दिसम्बर में वाराणसी आदि स्थानों में नवगीत सम्बन्धित आयोजन हुए, जिनमें डॉ. शम्भुनाथ सिंह, उमाशंकर तिवारी, श्री कृष्ण तिवारी, माहेश्वर तिवारी, डॉ. जगदीश अतृप्त, डॉ. सुरेश व डॉ. श्री राम वर्मा आदि रचनाकर्मियों ने भाग लिया। इन आयोजनों के क्रम में २८ फरवरी व १ मार्च १९८७ ई. को गाजियाबाद व दिल्ली में दो दिवसीय कार्यक्रम का भी समापन हुआ। गाजियाबाद के अध्यक्षीय उद्बोधन में 'प्रभाकर माचवे'

ने गद्य-कविता की गति और मति पर खुलकर निराशा व्यक्त की और 'नवगीत' को 'भारतीय अस्मिता की मनोभूमि' कहा । दिल्ली में शीर्षस्थ समीक्षक डॉ. नगेन्द्र की अध्यक्षता तथा गिरिजा कुमार माथुर, विजयेन्द्र स्नातक, डॉ. बलदेव वंशी, डॉ. कृष्ण दत्त पालीवाल, रमानाथ अवस्थी, रमेश रंजक तथा भारत भूषण आदि वरिष्ठ नवगीतकारों की उपस्थिति में विचारोत्तेजक परिसंवाद व कवि-गोष्ठी हुई । गिरिजा कुमार माथुर व रमानाथ अवस्थी सहित अनेक रचनाकारों ने नवगीतों को गाकर सुनाया । यह कहने की आवश्कता नहीं है कि इन समस्त आयोजनों के सूत्रधार डॉ. शम्भुनाथ सिंह थे, जो शारीरिक अस्वस्थता के बावजूद न सिर्फ श्रमसाध्य आयोजन रच रहे थे, वरन् गीतात्मक निष्ठा जन्य उत्साह से भाग ले रहे थे । नवगीत विकास-यात्रा में इन समारोहों का महत्वपूर्ण योगदान है ।

उपर्युक्त सन्दर्भित समवेत संकलनों के अतिरिक्त नवें दशक में प्रतिष्ठित नवगीतकारों के अनेक स्वतंत्र संकलन प्रकाशित हुए । विनोद निगम कृत जारी हैं, लेकिन यात्राएँ (१९८१), श्रीकृष्ण तिवारी कृत 'सन्नाटे की झील' (१९८१), माहेश्वर तिवारी कृत 'हर सिंगार कोई तो हो' (१९८१), बुद्धिनाथ मिश्र कृत 'जाल फेंक रे मछेरे' (१९८३), उमाकान्त मालवीय कृत 'एक चावल नेह रींधा' (१९८३), राजेन्द्र गौतम कृत 'गीत पर्व आया है' (१९८३), हरीश निगम कृत 'होठ नीले धूप में' (१९८४), कुमार रवीन्द्र कृत 'आहत हैं वन' (१९८४), रमेश रंजक कृत 'दरिया का पानी' (१९८४), अनूप अशेष कृत 'वह मेरे गाँव की हँसी थी' (१९८६), 'डॉ. शम्भुनाथ सिंह कृत 'वक्त की मीनार पर' (१९८६), राम सेंगर कृत 'शेष रहने के लिए' (१९८६), उमा शंकर तिवारी कृत 'धूप कड़ी है' (१९८६), भगवान स्वरूप कृत 'एक चेहरा आग का' (१९८८), राधेश्याम बन्धु कृत 'प्यास के हिरन' (१९८९) आदि अनेक नवगीत संकलन इस दशक में प्रस्तुत हुए ।

यह स्पष्ट है कि प्रकाशन सम्बन्धी असुधिाओं के कारण समस्त रचित नवगीत साहित्य पुस्तकों का आकार नहीं ले पाया किन्तु उसका बहुत बड़ा अंश पिछले दो दशकों में पत्र-पत्रिकाओं में बिखरा पड़ा है । निश्चय ही वह अपने परिमाण में कई समवेत संकलनों के समकक्ष हैं । अनेक ऐसे भी कवि हैं जो वर्षों पत्र-पत्रिकाओं में छपते रहे हैं, मगर उनके संकलन नहीं आ पाये । इन कवियों की रचनाएँ पत्रिकाओं में निरन्तर प्रकाशित होती रही हैं - सूर्य भानु गुप्त, सूर्य कुमार पाण्डेय, श्याम सुन्दर दुबे, विनोद तिवारी, धनंजय सिंह, आनन्द शर्मा, श्याम निर्मम, किशोर काबरा, गोपाल चतुर्वेदी, महेन्द्र कुमार मिश्र, सावित्री परमार, कैलाश गौतम, असीम शुक्ल, किशन 'सरोज', सोमठाकुर, विष्णु विराट, श्री कृष्ण शर्मा, आलोक तोमर, छविनाथ मिश्र, कृष्ण 'कल्पित', बाबूराम शुक्ल, पाल भसीन, शैलेश पंडित, अजीत श्रीवास्तव, सुरेन्द्र कुमार काले आदि ऐसे ही रचनाकार हैं ।

जिन सरकारी अथवा गैर-सरकारी, लघु अथवा बड़ी पत्र-पत्रिकाओं में 'नवगीत' साहित्य का प्रकाशन होता रहा है, वे हैं - आजकल, उत्तर प्रदेश, आशीर्वाद, हिमप्रस्थ, गिरिराज, हरियाणा संवाद, जन साहित्य, पंजाब-सौरभ, प्रतीक, नयी कविता, मध्य प्रदेश, श्रम पत्रिका, डाकतार, जागृति, मधुमती, पूर्वाग्रह, वर्त्तिका, दिल्ली, देवनागर, द्वीप प्रभा, ज्योत्स्ना, वीणा, नागरी पत्रिका, सरस्वती, तत्पर, सम्बोधन, नवगीत, कादम्बिनी, हिन्दी एक्स्प्रेस, अवकाश, रविवार, धर्मयुग, ज्ञानोदय, साप्ताहिक हिन्दूस्तान, जनसत्ता, नवभारत, नवभारत टाइम्स, दैनिक हिन्दूस्तान, कल्पना, दैनिक ट्रिव्यून, आज, अमृतप्रभात, नयी दुनिया, दैनिक जागरण, अमर उजाला, स्वतंत्र भारत सुमन, कथादेश, नया प्रतीक, कंचन-प्रभा, लहर, प्रभा, नयी धारा, लोक

स्वाति, मुक्त कण्ठ, जीवन प्रभात, लोक-ध्वनि, नवनाद, दैनिक भास्कर, ऋतुचक्र, सानुबन्ध, काल-बोध, करण्ट, सरिता, मुक्ता, रसवंती, कात्यायनी, माध्यम आदि । इनके अतिरिक्त कुछ पत्रिकाओं ने नवगीत के विशेषांक निकाल कर इस दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी हैं - 'वासन्ती', 'कविता', अन्तराल', 'परिवेश', 'स्रोतस्विनी', 'सांध्यमित्रा', 'ऋतुचक्र', 'अनन्या', 'वातायन', 'ऋचा', 'नवनीत', 'शोध-स्वर', 'उत्तरा', 'आइना', 'नये-पुराने' व 'विशाखा', इस वर्ग की प्रमुख पत्रिकाएँ हैं । उपर्युक्त पत्र-पत्रिकाओं ने नवगीत-रचना और आलोचना को पाठकों तक पहुँचाने और लोकप्रिय बनाने का दायित्वपूर्ण निर्वाह बखूबी किया । बड़ी पत्रिकाओं में 'धर्मयुग' ने इसे सर्वाधिक महत्व दिया । अप्रैल १९८२ के दो अंकों में डॉ. विश्वनाथ प्रसाद का लेख 'हिन्दी नवगीत और नवगीतकार' प्रशासित हुआ । इसने हिन्दी-जगत में कुछ ऐसी हलचल मचा दी कि अगस्त १९८२ के अंक में नवगीत से जुड़े राजेन्द्र प्रसाद सिंह तथा रामनरेश पाठक की तार्किक प्रतिक्रियाएँ सामने आईं और साथ ही डॉ. विश्वनाथ प्रसाद का प्रत्युत्तर भी प्रस्तुत हुआ । अगस्त १९८२ के आगामी दो अंकों में 'नवगीत' के विषय पर नवगीतकारों की एक सार्थक परिचर्चा प्रकाशित हुई, जिसमें नवगीत के महत्वपूर्ण पक्षों पर डॉ. शम्भुनाथ सिंह, उमाकान्त मालवीय, माहेश्वर तिवारी, शान्ति सुमन, ओम प्रभाकर, रमेश रंजक, गुलाब सिंह, अनूप अशेष तथा डॉ. कुँवर बेचैन का दृष्टिकोण सामने आया । अप्रैल १९८६ के अंक में 'नवगीत अर्द्धशती समारोह' की रीपोर्ट के बहाने कैलाश सेंगर का डॉ. शम्भुनाथ सिंह से नवगीत केन्द्रित एक लम्बा साक्षात्कार भी प्रकाशित हुआ ।

समाचार पत्रों के साहित्यिक पन्नों व पत्रिकाओं में नवगीत व उस पर केन्द्रित विभिन्न पक्षीय आलेख समादृत होते रहे हैं । किन्तु साहित्यानुशीलन करने वालों के बीच 'नवगीत' अब सर्वांग स्वरूप में अनुसंधान की अपेक्षा रखता है । परिणामतः नवगीत-विधा विभिन्न विश्वविद्यालयों में शोध-विषय के विभिन्न रूपों में स्वीकृत होकर अनुसंधिस्तु हुई है । यह विडम्बना ही कहा जाएगा कि, इस अत्यन्त महत्वपूर्ण विधा से सम्बन्धित दो-चार महत्वपूर्ण ग्रन्थ ही अब तक प्रकाश में आ सके हैं । इनमें प्रो. विष्णुकान्त शास्त्री द्वारा लिखित 'गीत और नवगीत : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य' और डॉ. विनोद गोदरे कृत 'छायावादोत्तर हिन्दी प्रगीत' आदि प्रमुख हैं । नवगीत केन्द्रित प्रकाशित ग्रन्थों में राजेन्द्र गौतम कृत 'हिन्दी नवगीत : उद्‌भव और विकास' (१९८४ ई.), डॉ. शिवनारायण सिंह व डॉ. उमाशंकर तिवारी द्वारा सम्पादित 'नवगीत के प्रतिमान तथा आयाम' (१९८८ ई.), डॉ. सुरेश गौतम व डॉ. श्रीमती वीणा गौतम की शोधात्मक आलोचना 'नवगीत : इतिहास और उपलब्धि' (१९९० ई.) तथा डॉ. सत्येन्द्र शर्मा कृत आलोचनात्मक ग्रन्थ 'नवगीत : संवेदना और शिल्प' (१९९३ ई. आदि कृतियाँ उल्लेखनीय हैं । पूर्वाग्रहों, चिन्तन सीमाओं और खेमेबाजीजन्य अनेक विसंगति युक्त धारणाओं के बावजूद राजेन्द्र गौतम की पुस्तक 'नवगीत की परिचयात्मक भाव-भूमि' का अच्छा आधार है ।

'नवगीत के प्रतिमान तथा आयाम' के अन्तर्गत संग्रन्थित निबन्ध अपेक्षाकृत अधिक गहन विचारपूर्ण एवं विश्लेषणात्मक हैं । इस पुस्तक में विधा की पहचान, जातीय बोध, जनबोध बिम्बधर्मिता, जनवादी चेतना, परिवेशगत सन्दर्भ, व आधुनिकताबोध को रेखांकित करते हुए क्रमशः उमाशंकर तिवारी, गुलाब सिंह, डॉ. जगदीश 'अतृप्त', कान्तिबाबा साहब लोधी, प्रो. सत्येन्द्र शर्मा व डॉ. शम्भुनाथ सिंह के लेख हैं ।

कवियों द्वारा मिले संकेतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अनेक नवगीत संकलन या तो उनमें से कुछ प्रकाशित हो चुके हैं या फिर प्रकाशनाधीन हैं । उनमें से कुछ हैं - शनिगांधार, सेतु संगीत, जल रही है चारूकेशी, सिन्धु भैरवी, आखत ध्रुपद तथा अंतरा और अंतराल (वीरेन्द्र मिश्र), अनन्तिमा तथा दो अन्य नवगीत संकलन (देवन्द्र शर्मा 'इन्द्र'), 'एक चिड़िया डाल पर' तथा 'नींद में चुपचाप कविताएँ' (माहेश्वर तिवारी), हड्डियों का पुल (देवेन्द्र कुमार), 'शेष रहने के लिए', 'रेत की व्यथा कथा' (राम सेंगर) । इनके अतिरिक्त इस श्रृंखला में गुलाब सिंह एवं अनूप अशेष के संकलनों के भी समावेश की संभावना है । वर्तमान में जिन पत्रिकाओं में 'नवगीत' सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं पर गहराई से चिन्तन-मनन चल रहा है और नवगीतों के प्रकाशन का महत्वपूर्ण कार्य हो रहा है, उनमें डॉ. विष्णु विराट द्वारा सम्पादित 'भव्यभारती', मधुकर गौण द्वारा सम्पादित 'सार्थक', कुँवर बेचैन कृत 'सुर-संकेत' आदि का भी महत्वपूर्ण योगदान है ।

इस अध्यायान्तर्गत हमने अब तक प्रकाशित उन सभी उल्लेखनीय नवगीत-संकलनों का यथोचित विश्लेषण करने का हर संभव प्रयत्न किया है, जो हमें उपलब्ध हो सके हैं । कुछ संकलनों की प्रकाशन-सूचना प्राप्ति के बावजूद उन्हें हम प्राप्त नहीं कर सके हैं । यह हमारे प्रयासों की सीमा है । 'कांवर भर धूप' (नारायण लाल परमार), 'शंख...रेत के चेहरे' (कुमार शिव), तथा 'सूने पड़े सीवान' (इसाक अश्क) ऐसे ही संकलन हैं । इनके अतरिक्ति श्री सत्यनारायण, श्री मयंक श्रीवास्तव एवं श्री उद्‌भान्त के संकलनों के प्रकाशन के संकेत भी पत्र-पत्रिकाओं में मिले हैं ।

इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता के बहु आयामी विकास के समानान्तर ही नवगीत की धारा भी अविकल रूप से प्रवाहित होती रही है । इस धारा के विकास-क्रम के विश्लेषण से यह भी स्वतः सिद्ध हो जाता है कि, ''नवगीत ही सम्पूर्ण हिन्दी कविता का एक मात्र ऐसा प्रारूप है, जिसमें आवृत्तियों-पुनरावृत्तियों एवं रूढ़िबद्धताओं से मुक्त सर्वथा स्वतंत्र और नव्यताकामी उत्कर्ष-संवेदना और शिल्प के स्तरों पर - विशेष रूप से परिलक्षित होता है । उस पर 'कार्बन राइटिंग' का वैसा आरोप नहीं लगाया जा सकता जैसा कि 'नयी कविता' पर प्रायः लगाया जाता रहा है ।[३७] नयी कवितावादियों व गणमान्य आलोचकों का नवगीत के प्रति वांछित अनुकूल दृष्टिकोण न होने के बावजूद भी उसके रचना क्रम में सराहनीय प्रगति हुई है । पिछले चार-पाँच दशकों में गीत को लेकर हुए वैचारिक मंथन ने प्रमाणित कर दिया है कि नवगीत क्रमशः विकसित होकर नवम् दशक तक आते-आते हिन्दी कविता की प्रतिनिधि धारा बन चुका था । उसने रूढ़ियों के शैवाल को झटककर एक नया और स्वस्थ कलेवर धारण किया है । जहाँ तक बोध का प्रश्न है - उसने सामयिक भारतीय साहित्य ही नहीं, विश्व साहित्य की चेतना को भी अपने भीतर समाहित किया है, परन्तु इस नव-विकास के लिए उसे अपनी ही भूमि से उखड़ जाने की आवश्यकता कभी महसूस न हुई ।

संदर्भ सूची :

१. डॉ. शम्भुनाथ सिंह : नवगीत दशक-१, भूमिका, पृष्ठ-६ एवं ९
२. डॉ. सुरेश गौतम ; नवगीत : इतिहास और उपलब्धि, पृष्ठ २३
३. श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह : गीतांगिनी, भूमिका, पृष्ठ ३, ४
४. डॉ. शम्भुनाथ सिंह : नवगीत अर्द्धशती, पृ. १०
५. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद : स्मारिका (नवगीत अर्द्धशती समारोह, ८६) - पृ. ६९
६. सुबह रक्त पलाश की : उमाकान्त मालवीय, पुरोवचन - ६, ज
७. मधुमती, नवम्बर - १९६७, पृ. १४
८. नवगीत अर्द्धशती समारोह (स्मारिका) १३-१४ सितम्बर ८६
९. डॉ. सत्येन्द्र शर्मा; नवगीत : संवेदना और शिल्प-१२१
१०. निराला : निराला रचनावली - १ (सं. नन्दकिशोर नवल) पृ. ४१५
११. डॉ. बच्चन - पाँच जोड़ बाँसुरी : सं. चन्द्रदेव सिंह, पृष्ठ १८०
१२. नवगीत अर्द्धशती : सं. शंभुनाथ सिंह, पृष्ठ १०
१३. निराला : निराला रचनावली-१, सं. नन्द किशोर नवल, पृष्ठ १३४
१४. वही, पृष्ठ १९८
१५. निराला : अपरा, पृष्ठ १६०
१६. माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली - ६ : सं. श्रीकान्त जोशी, पृष्ठ २७२
१७. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : रश्मि रेखा; पृष्ठ ११७
१८. सत्येन्द्र शर्मा : नवगीत : संवेदना और शिल्प; पृष्ठ २७
१९. वही ; पृष्ठ २७
२०. बच्चन : धार के इधर-उधर; पृष्ठ ४०
२१. प्रवासी के गीत, वक्तव्य : श्री नरेन्द्र; पृष्ठ ३, ४
२२. प्रवासी के गीत; पृष्ठ ९२
२३. शंभुनाथ सिंह :व्यक्ति और सृष्टा : सं. करूणा पति त्रिपाठी एवं अन्य - पृष्ठ ३३
२४. रामशेर बहादुर सिंह : पूर्वाग्रह (अंक ७५) : सं. अशोक बाजपेयी, पृष्ठ ४

२५. डॉ. नामवर सिंह : नीम के फूल

२६. विपाशा (अंक २६, मई-जून ८९) - पृष्ठ ४९

२७. नवगीत : संवेदना और शिल्प : डॉ. सत्येन्द्र शर्मा, पृष्ठ १२५

२८. ठाकुर प्र. सिंह : वंशी और मादल, कहने की बात, पृष्ठ ७

२९. डॉ. बच्चन : आरती और अंगारे : अपने पाठकों से, पृष्ठ १७

३०. डॉ. रामदरश मिश्र : वासन्ती (अंक-मार्च १९६२) सं. महेन्द्र शंकर, पृष्ठ १२

३१. डॉ. सत्येन्द्र शर्मा : नवगीत : संवेदना और शिल्प, पृष्ठ १२९

३२. सर्जना और सन्दर्भ (अज्ञेय) : साक्षात्कार में, पृष्ठ २२८-३४

३३. डॉ. शिवकुमार मिश्र : आधुनिक कविता और युग दृष्टि, पृष्ठ १९०

३४. राजेन्द्र गौतम : हिन्दी नवगीत : उद्‌भव और विकास, पृष्ठ ३३

३५. डॉ. सत्येन्द्र शर्मा : नवगीत : संवेदना और शिल्प, पृष्ठ १३९

३६. वही, १३९

३७. डॉ. राजेन्द्र गौतम : हिन्दी नवगीत : उद्‌भव और विकास, पृष्ठ ४०